कश्मीर
झुलसता स्वर्ग



क्षितीश

कश्मीर
झुलसता स्वर्ग

लेखक
क्षितीश वेदालंकार

दि वर्ड पब्लिकेशन्स
८०७/९५ नेहरू प्लेस, नई दिल्ली—११००१९

कश्मीर झुलसता स्वर्ग
प्रथम संस्करण: दिसम्बर १९९०

आवरण सज्जा: दुष्यंत पाराशर
मुद्रक: गायत्री ऑफसेट, नोएडा

मूल्य रु. ३०

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

१. आर्यसमाज अनारकली, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली - १
२. सार्वदेशिक सभा, आसफअली रोड, नई दिल्ली - २
३. गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली - ६
४. भारती साहित्य सदन, ३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली - १
५. किताब घर, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-२
६. आर्य प्रकाशन, ८१४ कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली - ६

झुलसते स्वर्ग में उभरती/जागती उम्मीदें

–संत समीर
प्रतिष्ठित पत्रकार और समाज-कर्मी

'धरती का स्वर्ग' कहते ही कश्मीर की हरी-भरी वादियों की नयनाभिराम दृश्यावलियाँ आँखों में तैरने लगती हैं। आँखों को ही नहीं, विरासत गवाह है कि मन को भी बौद्धिक तोष प्रदान करने वाला अद्‌भुत वातावरण कश्मीर ने सृजित किया है। कश्मीर की हवाओं में गूँजते धर्म-अध्यात्म, साहित्य, कला, संगीत के संदेशों की अनुगूँज को देश ही नहीं दुनिया भर में सुना गया है। आश्चर्य नहीं है कि भारतीय मेधा के चरम उत्कर्ष के चिह्न यहाँ के खंडहर हो चुके अवशेषों में आज भी देखे और महसूस किए जा सकते हैं। ढाई हजार साल पहले आदि शंकराचार्य अगर दक्षिण से चलकर उत्तर के इस भूखंड तक पहुँचना जरूरी समझ रहे थे, तो मतलब यही है कि कश्मीर की हस्ती कुछ खास रही है।

अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् और क्रांतिधर्मी लेखक क्षितीश वेदालंकार जी ने **'कश्मीरः झुलसता स्वर्ग'** के रूप में धरती के इस स्वर्ग के नरक कुंड बनते जाने की व्यथा-कथा का बहुत हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। यह पुस्तक वेदालंकार जी के कश्मीर पर लिखे क्रमशः संपादकीय अग्रलेखों का संग्रह है। सन् 1990 में जब यह प्रकाशित हुई तो इसने बुद्धिजीवी समाज को कश्मीर समस्या पर खूब उद्वेलित किया। आज जब इस पुस्तक को पुनः-प्रस्तुत किया जा रहा है, तो इसके पुनःपाठ की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ती हुई दिखाई दे रही है; क्योंकि इस पुस्तक से गुजरते हुए कश्मीर समस्या की जड़ पकड़ में आती है।

कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग कहने के आधार पर, और इसे स्वर्ग से नरक बनाने वाले कुछ पहलुओं पर एक सरसरी निगाह डाल लेना यहाँ आवश्यक है।

कश्मीर सिर्फ भौगोलिक वजहों से ही भारत का ताज नहीं है, यह अपनी समृद्ध और विविधतापूर्ण परंपराओं की दृष्टि से भी भारत के इतिहास का गौरवशाली अध्याय है। ज्ञान की ऐसी परंपरा का उदाहरण शायद ही संसार के इतिहास में किसी और प्रदेश में मिलता हो। कल्हण को महाकवि कहें या इतिहासकार, उन्होंने इसी प्रदेश में बैठकर यहाँ की समृद्ध परंपरा को **'राजतरंगिणी'** के रूप में लिखा। भारतीय साहित्यशास्त्र के मूर्धन्य आचार्य, कश्मीरी शैव और तंत्र के पंडित तथा दार्शनिक अभिनव गुप्त, महाकवि कालिदास, महाभाष्य के लेखक पतंजलि, कैय्यट, मैय्यट और जैय्यट जैसे टीकाकार कश्मीर

की ही देन हैं। बिल्हण, जल्हण, क्षेमेंद्र, वसुगुप्त, मम्मट, भीमभट्ट, दामोदर गुप्त, रत्नाकर, वल्लभ देव, सोमदेव, जयद्रथ जैसे विद्वानों की कर्मस्थली कश्मीर ही है। भारतीय इतिहास के गौरव रूप कश्मीर के ऐसे पंडितों के साथ-साथ वहाँ के तीर्थ-स्थलों पर भारतीयों की श्रद्धा का उल्लेख भी इस पुस्तक में किया गया है।

पंडितजी की इस पुस्तक से प्रेरित होकर मन में यह जिज्ञासा उठती है कि 'ऐसे गौरवशाली अतीत के बाद धीरे-धीरे कश्मीर रक्तरंजित विडंबनाओं की धरती कैसे बना? और किन दुर्दांत शक्तियों ने हमारे देश की प्रतिभा को हड़प लिया?' वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए भी इसकी खोज करना आवश्यक लगा, तो कुछ ऐसे तथ्य ज्ञात हुए, जिनके उल्लेख से वैदिक-धर्मियों व भारत-प्रेमियों को आगे के लिए सावधान रहने की दिशा और शिक्षा मिलेगी।

कश्मीर के दुर्दिन शुरू हुए सन् 1315 में, जब शाह मीर नाम के एक मुस्लिम शरणार्थी युवक को वहाँ के राजा उदयदेव ने शरण दी। और, जिस पड़ोसी मुस्लिम राज्य से वह भागकर आया था, उसके बारे में जानकारी रखने के लिए उस मीर को राजा ने परामर्श-मंडल में स्थान देने की भूल की। उस धूर्त ने संस्कृत भी सीखी; और धीरे-धीरे राज्य के असंतुष्टों के सहयोग से हिंदू-आधिपत्य की समाप्ति करके 1339 में अपना शासन स्थापित कर लिया। उसका राजतिलक संस्कृत-मंत्रोच्चार के साथ हुआ। फिर तो तलवार के बल पर धर्म-परिवर्तन का भयावह अभियान चलाया जाने लगा। यह तथ्य क्या आज के उन भारतीयों की आँखें खोलेगा, जो एक नहीं, लाखों रोहिंग्याओं को शरण देने की वकालत करते हैं?

इस मुस्लिम शासक के बाद तो आक्रांताओं का ताँता ही लग गया। उन सभी के शासन-काल का अधिकांश समय कश्मीरी हिंदुओं, खासतौर से कश्मीरी पंडितों के लिए पीड़ादायी रहा। ध्यान रहे, कश्मीर में पंडित शब्द महज जातीय पहचान तक सीमित नहीं है। पंडित का अर्थ विद्वत्ता की समृद्ध परंपरा से है। कश्मीर में विद्वत्-समाज का वैसा ही बोल-बाला रहा है, जैसा कि कालांतर में काशी में। इस्लाम के अनुयायी ज्यादातर आक्रांताओं को हिंदू ज्ञान-परंपरा से चिढ़ थी। उन्होंने हिंदू ज्ञान परंपरा के स्रोतों और पूजा स्थलों को बुरी तरह से नष्ट किया। कश्मीरी पंडितों को कई बार पलायन का दंश झेलना पड़ा। 1990 का नरसंहार और पलायन उसी बर्बरता की सातवीं कड़ी था।

पहला बड़ा पलायन सुल्तान सिकंदर के समय (14वीं सदी के अंत) में हुआ था। वह 'बुतशिकन' के रूप में मशहूर था। उसने बड़े पैमाने पर हिंदुओं का

कत्लेआम कराया। बर्बरता इस हद तक की गई थी कि उस समय कश्मीर में हिंदुओं के सिर्फ ग्यारह परिवार ही जैसे-तैसे बच पाए थे। शेष सबको मार दिया गया था या वे वहाँ से पलायन कर गए थे। जबरन धर्म परिवर्तन तो खैर बड़े पैमाने पर कराया ही गया था। इसका वजीर सैफ-उद-दीन, जो पहले ब्राह्मण सुहा बट था, बहुत क्रूर सिद्ध हुआ, सारस्वत ब्राह्मणों पर विशेष रूप से। हसन और लौरेंस के कथनानुसार इस्लाम कबूलने वाले ब्राह्मणों के छह-छह मन, और मारे गए ब्राह्मणों के सात-सात मन जनेउओं को यह रोज जलवाता था।

दूसरा बड़ा पलायन: इसी सिकंदर के बेटे अली शाह (1413-20) ने अपने बाप के अत्याचारी वजीर और उसकी परंपरा को कायम रखा। अब उसने जजिया कर और लगा दिया। उसने ईद के दिन ब्राह्मणों की धार्मिक यात्राओं पर रोक लगा दी। अनेक ब्राह्मणों ने धर्म-परिवर्तन न करके स्वयं को जला दिया, जहर खाया या फाँसी पर लटक गए। अनेक अपना प्यारा कश्मीर छोड़कर पलायन कर गए। देश छोड़ने वाले ऐसे कश्मीरियों को भी इसने अपने सैनिकों से मरवाया। या वे रास्ते की कठिनाइयों से, साँपों के काटने आदि से मारे गए।

अगला शासक 'सुल्तान जैनुल आब्दीन', इसी सिकंदर बुतशिकन का दूसरा पुत्र था, जिसने अपने पिता की गलतियों को माना और एक तरह से प्रायश्चित किया। सुल्तान ने एक हिंदू-पंडित श्रीभट्ट के समझाने पर कश्मीरी पंडितों की फिर से घर वापसी कराई। इसके समय कश्मीर की जनता ने जरूर कुछ सुकून की साँस ली; और हिंदू धर्म पर अत्याचार बंद हुए। उसने कुछ तोड़े गए मंदिरों का पुनर्निर्माण भी कराया।

तीसरा बड़ा पलायन: शिया संप्रदाय के काजी चक (=शक, 1506-85) के शासन में यही हालात रहे। के. ऐल. भान अपनी पुस्तक, 'Paradise Lost' (गुमशुदा स्वर्ग) में लिखते हैं, ''चक शासक न केवल क्रूर थे, वे कश्मीरी पंडितों पर जुल्म करने के नए-नए तरीके ईजाद करने में माहिर थे। धर्म-परिवर्तन से बचने के लिए अनेक हिंदुओं ने कश्मीर से पलायन किया। इस शासक ने कश्मीर की संस्कृति और पहचान को पूरी तरह बदलने का काम किया।''

चौथा बड़ा पलायन: 17वीं सदी में औरंगजेब ने सभी कश्मीरी पंडितों को इस्लाम कबूल कराने का आदेश दिया। उस समय कश्मीरी पंडितों के प्रतिनिधि थे कृपाराम। वे सिखों के गुरु तेग बहादुर के आनंदपुर साहिब स्थित दरबार में पहुँचे और उनसे इस मुसीबत से बाहर निकालने का निवेदन किया। गुरु तेगबहादुर अपने साथ पाँच संगियों (जिनमें तीन कश्मीरी पंडित थे,) को लेकर

दिल्ली पहुँचे। जब गुरुजी ने मुगल सम्राट औरंगजेब के आदेश पर इस्लाम स्वीकार करने से इनकार कर दिया तो 11 नवंबर, 1675 को उन्हें मौत की सजा दे दी गई। हालाँकि इसके बाद कश्मीरी पंडितों का पलायन भी रोक दिया गया। भारतीय हिंदुओं के रक्षक ऐसे सिक्ख गुरुओं के इन्हीं सेनानियों का आज एक पृथक् खालिस्तान पाने के लिए आतंकी मुस्लिमों से जुड़ना उनके झूठे अहंकार को ही दर्शाता है।

पाँचवाँ बड़ा पलायन अफगान पठानों के 66 वर्षीय शासन काल में हुआ। 1752 में पठानों ने धावा बोला था। पठानों का शासन-काल सबसे बर्बर कहा जाता है। पठानों के समय में अनिगिनत कश्मीरी पंडितों को डल झील में डुबो दिया गया; और ऊपर से बोरों में भर-भरकर उनके जनेउओं को। उन पर जजिया कर भी लगाया गया। सन् 1819 में महाराजा रणजीत सिंह की सेना ने कश्मीर पर कब्जा जमाया और कुछ समय बाद यह डोगरा शासन के अधीन हो गया। इसी शासन के अंतिम शासक थे राजा हरि सिंह। इनका शासन 1947 में कश्मीर के भारत में विलय के साथ समाप्त हुआ।

छठा बड़ा पलायन हुआ 1947 में, जब पाकिस्तान की ओर से कबायलियों ने कश्मीर पर धावा बोला। 'झुलसता स्वर्ग' में कश्मीर की तब की व्यथा-कथा को दर्शाया गया है कि जब सन् 1947 में देश दो भागों में बँटा। तब क्या हुआ था? 1948 में यूनाइटेड नेशंस में यह मामला कैसे पहुँचा? 1949 में धारा 370 का प्रवेश भारत के संविधान में कैसे हुआ? 1950 में क्या हुआ? 1952 में जो दिल्ली समझौता हुआ, उसका जुगराफिया क्या था? 1954 में आदेश क्या आया था? 1956 में जम्मू-कश्मीर का जो संविधान बना, उसमें कौन-सी विशेषताएँ थीं? 1963 में किस तरह के परिवर्तन हुए? पंडितजी की पुस्तक पढ़ते हुए ये तमाम चीजें स्पष्ट होती जाएँगी।

सातवाँ बड़ा पलायन: यह सबसे बड़ा और भयावह पलायन हुआ जनवरी, 1990 में, जब लाखों कश्मीरी पंडितों को रातोंरात अपना घर-परिवार छोड़कर भागना पड़ा। इस तरह से धरती का यह स्वर्ग धीरे-धीरे नरक कुंड में तब्दील होता गया। पंडित क्षितीश जी ने इसी सातवें पलायन का सटीक वर्णन इस पुस्तक में किया है। इसको पढ़ने से आप आश्वस्त हो जाएँगे कि कश्मीर की समस्या वास्तविक है; और तुरंत निदान माँगती है। यद्यपि पुस्तक में समस्या के कारण और उसके समाधान के सुझाव शामिल हैं, तथापि यहाँ कुछ बातों का संकेत उचित होगा।

वास्तव में वर्तमान समस्या की जड़ भारत-विभाजन की प्रक्रिया में है। 1947 में 'इंडियन इंडिपैंडैन्स ऐक्ट' ब्रिटेन की संसद में पारित हुआ। उसी ऐक्ट के तहत भारत को खंडित किया गया। इस ऐक्ट के लागू होते ही देशी रियासतें भारत या पाकिस्तान के साथ मिलने के लिए स्वतंत्र हो गईं। पाकिस्तान में कश्मीर के विलयन के लिए जिन्ना ने दाँव-पेंच चलाना शुरू किया, पर उन्हें कामयाबी नहीं मिली। कश्मीर के महाराजा हरि सिंह भारत या पाकिस्तान में अपने राज्य का विलय नहीं करना चाहते थे। वे स्वतंत्र रहना चाहते थे। उनका सपना था कि वे कश्मीर को एशिया का स्विट्जरलैंड बनाएँगे।

1947-48 के काल-खंड में कश्मीर को लेकर भारत और पाकिस्तान के बीच जो घटना-क्रम चला, उसका इस पुस्तक में रोमांचक वर्णन है। कैसे पाकिस्तानी सेना के अफसरों की अगुवाई में कश्मीर पर हमला हुआ; कैसे राजा हरि सिंह को मजबूर होकर भारत से सहायता की गुहार लगानी पड़ी; कैसे नाटकीय ढंग से रातों रात कश्मीर के भारत में विलय के 'इंस्ट्रुमेंट ऑफ ऐक्सेशन' पर हस्ताक्षर हुए; और कैसे भारतीय वायुसेना को श्रीनगर हवाई अड्डे पर पहुँचने में यदि कुछ ही घंटों की देर हो जाती तो श्रीनगर भारत के हाथ से निकल जाता।

1947-48 के घटनाक्रम के साथ ही उस समय के शीर्षस्थ नेताओं की भूमिका पर भी पुस्तक विशेष प्रकाश डालती है। जिन्ना ने तो कश्मीर हथियाने के लिए सभी प्रकार के दाँव-पेंच आजमाए ही। शेख अब्दुल्ला ने गिरगिट की तरह रंग बदले। पंडित नेहरू की विभाजन के समय, और उसके कई वर्ष बाद तक भी, शेख से विशेष मित्रता रही। भारत के अंतिम वाइसराय माउंटबेटेन का व्यवहार भी भारत के हित में रहा हो, यह संदिग्ध है। यदि सरदार पटेल निर्णायक रुख न अपनाते तो संभव था कि माउंटबेटेन इंस्ट्रुमेंट ऑफ ऐक्सेशन पर समय रहते हस्ताक्षर ही न करते।

कश्मीर के संबंध में नेहरू जी की अदूरदर्शिता के कई उदाहरण हैं। 2 नवंबर, 1947 को नेहरू ने एक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने कहा—"जैसे ही शांति कायम होगी, वैसे ही हम जम्मू-कश्मीर में जनता की राय लेंगे और जनता की राय से ही फैसला करेंगे।" कश्मीर की समस्या को जटिल बनाने में नेहरू का यह भाषण सबसे दुर्भाग्यपूर्ण पहलू रहा है, जिसका संदर्भ लेकर पाकिस्तान अक्सर तलवार भाँजने की कोशिश करता रहता है; और कश्मीर के अलगाववादी जनमत संग्रह की बात उठाते रहते हैं। ऐसा लगता है कि पं. नेहरू 'गुटनिरपेक्ष नेता की अपनी वैश्विक पहचान बनाए रखने, सदाशयी, विनम्र बने

रहने तथा साम्राज्यवादी दिखने से खुद को बचाने की आदर्शवादी उलझन में' यह चूक कर बैठे थे।

नेहरू जी ने संयुक्त राष्ट्र पर भरोसा किया कि संभवत: वह समस्या सुलझाने में सबसे बड़ा मददगार होगा। 31 दिसंबर, 1947 को भारत सरकार संयुक्त राष्ट्र पहुँची और चैप्टर-6 के तहत एक शिकायत दर्ज की गई। गनीमत यह रही कि नेहरू जी ने शिकायत चैप्टर-7 के बजाय चैप्टर-6 के तहत दर्ज कराई, अन्यथा संयुक्त राष्ट्र का जो भी फैसला होता, उसको मानना भारत की बाध्यता हो जाती। संयुक्त राष्ट्र में सुरक्षा परिषद की जब बैठक हुई तो अमेरिका और इंग्लैंड का भी असली चेहरा स्पष्ट होने लगा। इन दोनों देशों ने स्पष्ट रूप से भारत के खिलाफ अपनी राय रखी। इससे नेहरू काफी दुखी हुए कि जिन पर उन्होंने विश्वास किया, उन्होंने ही उन के साथ धोखा किया।

अंतत: 31 दिसंबर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र प्रस्तावित सीजफायर को अंतिम रूप दिया गया; और 1 जनवरी, 1949 से युद्ध विराम लागू हो गया। इस प्रकार, 27 अक्टूबर, 1947 से 31 दिसंबर, 1948 तक, करीब सवा साल युद्ध चला। जिस स्थिति में युद्ध रुका, उस स्थिति के हिसाब से कश्मीर का लगभग 35 प्रतिशत हिस्सा पाकिस्तान के कब्जे में और बाकी का 65 प्रतिशत हिस्सा भारत के कब्जे में रहा। यह बताना जरूरी है कि अगर नेहरू थोड़ी समझदारी दिखाते और संयुक्त राष्ट्र पर अंधविश्वास न करते, तथा सेना को कुछ और समय दे देते, तो एक-दो महीने के बाद शायद पूरा कश्मीर भारत का होता।

कश्मीर विवाद के और भी तमाम महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। पाकिस्तान द्वारा संयुक्त राष्ट्र के निर्देशों की अवहेलना, एलओसी, एलएसी, आजाद कश्मीर वगैरह के मुद्दे हैं, जिनके बारे में **'कश्मीर: झुलसता स्वर्ग'** के पन्ने पलटते हुए पाठकों की दृष्टि साफ होती जाएगी।

देश में जब तक आतंकवाद की मौजूदगी रहेगी, तब तक कश्मीर समस्या के मर्म को भी समझने की जरूरत बनी रहेगी। ध्यान देने वाली बात यह है कि इसी पुस्तक में कश्मीर समस्या के समाधान के लिए भी अनेक सुझाव दिए गए हैं। संतोष का विषय है कि इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण सुझावों पर, पुस्तक प्रकाशन के लगभग तीस वर्ष बाद ही सही, अमल हुआ है। **जैसे धारा-370 का निरस्त होना!**

कश्मीर समस्या को देश के लिए इतना भयानक नासूर बनाने में धारा-370 की बहुत बड़ी भूमिका रही है। यह धारा शेख अब्दुल्ला के आग्रह पर पंडित

नेहरू ने भारतीय संविधान में जुड़वाई थी। इस धारा के चलते कश्मीर भारत की मुख्य धारा से अलग-थलग था। कश्मीर के राजनेता इस धारा का दुरुपयोग अपने स्वार्थों के लिए कर रहे थे। 5 अगस्त, 2019 की तारीख भारत के लिए गौरव-दिवस से कम नहीं है, जबकि कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देने वाली संविधान की अनपेक्षित धारा-370 को हमेशा-हमेशा के लिए मिटा दिया गया। सबसे अच्छी बात यह है कि कश्मीर समस्या के अंत की सबसे बड़ी शुरुआत हो चुकी है। कोढ़ में खाज जैसी धारा-370 को भारतीय संविधान के दायरे में रहकर ही समाप्त कर दिया गया है। मोदी सरकार का यह समझदारी भरा कदम भारत के इतिहास का स्वर्णिम अध्याय बनेगा।

कश्मीर भी अब देश के अन्य राज्यों जैसा ही हो गया है। इसका नतीजा है कि वहाँ आए दिन होने वाली पत्थरबाजी की घटनाएँ समाप्तप्राय हैं। आतंकवादियों की घुसपैठ में भी कमी आई है। आम कश्मीरी अब खुद को देश के ज्यादा करीब महसूस कर रहे हैं। इस बात की भी आजादी मिल गई है कि कश्मीर में अब देश के दूसरे हिस्सों के लोग भी जमीनें खरीद सकते हैं। नागरिकों को वोट डालने का संपूर्ण अधिकार मिला है, तो चुनाव प्रक्रियाएँ वैसे ही संचालित की जाएँगी, जैसे देश के बाकी हिस्सों में। विकास के काम भी अब वहाँ तेजी से आगे बढ़ते दिखाई दे रहे हैं।

बहरहाल, धारा-370 की समाप्ति को कश्मीर समस्या का संपूर्ण हल मान लेना एकदम सही नहीं होगा। पाकिस्तान किसी भी हाल में भारत के इस संवैधानिक बदलाव को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। उसका राग वही है कि हम कश्मीर को लेकर रहेंगे। जाहिर है वह आतंकवाद के नए-नए चेहरे तैयार करने की कोशिश करेगा। मूल बातें आज भी वही हैं, पाकिस्तान की चालबाजियाँ वही हैं, आतंकवादियों के सपने वही हैं। धारा-370 की समाप्ति हमारी बड़ी उपलब्धि है, पर समाधान के ताने-बाने में कुछ धागे पिरोने अभी बाकी हैं।

इस संदर्भ में हाल ही में मार्च, 2022 में आई फिल्म 'द कश्मीर फाइल्स' ने कश्मीरी पंडितों के नरसंहार का कड़वा यथार्थ दिखाकर एक बार फिर इस बहस को तेज कर दिया है कि 'कश्मीर के आतंकवाद की जड़ों को तलाशना है, तो आतंकवादियों के दिमागों में भरे गए मजहबी जहर की भी शिनाख्त करनी होगी'। इस फिल्म में सच का दस-पंद्रह फीसदी ही दिखाया गया है। फिल्म देखते हुए स्पष्ट होता जाता है कि उस पूरी क्रूरता और एक पूरी कौम को अपनी जमीन से पलायन करने पर मजबूर कर देने की घटना

में मानवीयता-अमानवीयता का कोई मामला था ही नहीं, बल्कि इस्लाम और कुरान की व्याख्याएँ काम कर रही थीं।

अजब है कि जो लोग धर्म को अफीम कहते थकते नहीं, वे पाकिस्तान पोषित कश्मीर के आतंकवाद में धर्म को शामिल करने से गुरेज करते हैं। प्रगतिशील इतिहासकारों और सांप्रदायिक सद्‌भाव के छद्‌म पैरोकारों ने तथ्यों को लगातार छिपाने की कोशिश की है; और समस्या की असली जड़ों की शिनाख्त में बाधा पहुँचाई है। कड़वी सच्चाई यही है कि इस आतंकवाद की शिनाख्त बिना धर्म के संभव ही नहीं है। धर्म को अनुपस्थित कर दीजिए, पूरा इस्लामी आतंकवाद समाप्त हो जाएगा। पाकिस्तान कश्मीर में आतंकवाद को पोषित कर पाया तो उसकी सबसे बड़ी वजह इस्लामीकरण और गजवा-ए-हिंद जैसी कुरान की व्याख्याएँ हैं। जाहिर है, अगर दूसरे धर्मों की अपेक्षा मुसलमान युवक आतंकवाद की ओर आसानी से कदम बढ़ाते दिखाई देते रहे हैं, तो इसकी सबसे बड़ी वजह यही है कि कुरान को आतंकवाद के पक्षधर के रूप में उनके सामने पेश किया जाता रहा है।

शुभ संकेत है कि 'द कश्मीर फाइल्स' के बहाने ही सही, उस समय के चश्मदीद रहे कुछ कश्मीरी मुसलमानों ने सामने आने की हिम्मत दिखाई है। उन्होंने उस समय की घटनाओं का वर्णन किया है, जबकि उनके अपने गाँव में कश्मीरी पंडितों को आतंकवादियों ने एक तरफ से मौत के घाट उतार दिया था। कुछ मुसलमान महिलाओं ने हिम्मत दिखाते हुए मौलवियों से अपील की है कि हम मुसलमानों को कश्मीरी हिंदुओं के दर्द को महसूस करना चाहिए; और उनसे माफी माँगनी चाहिए कि, 'हमारे ही परिवारों में से कुछ लोगों ने पाकिस्तानी आतंकियों का साथ दिया, कश्मीरी हिंदुओं का बेरहमी से कत्ल किया और उनकी बहू-बेटियों की इज्जत को तार-तार कर दिया'। वास्तव में धर्म का नाम लेकर पनपते इस्लामी आतंकवाद को समाप्त करने में भारतीय मुसलमानों की बड़ी भूमिका हो सकती है। वे कुरान और इस्लाम की सकारात्मक और भाईचारा बढ़ाने वाली व्याख्याएँ दुनिया को दे सकते हैं, क्योंकि भारत के मुसलमानों में एक बड़ी संख्या है, जो सदियों से भाईचारा में जीती रही है।

भविष्य में धर्म की अफीम पिलाकर कश्मीर के मुसलमान युवकों को बरगलाया न जा सके, इसके लिए, पुस्तक के सुझावों के अनुसार, बड़े पैमाने पर सुधार कार्यक्रम चलाने की जरूरत है। ढाँचागत विकास के काम तेज होने चाहिए। शैक्षिक वातावरण को जितना बेहतर किया जाएगा, आतंकवाद की कमर तोड़ने में उतनी ही मदद मिलेगी। कश्मीर में कश्मीरी पंडितों को तो दुबारा बसाया

ही जाए, इसके अलावा अन्य समुदायों के लोगों को भी वहाँ जमीन-जायदाद बनाने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। संतुलन बनाने के लिए यह जरूरी है। यह हो पाएगा तो हिंदू, मुसलमान सभी सुकून की साँस ले पाएँगे और कश्मीर के लिए फिर से धरती का स्वर्ग बनना ज्यादा दूर नहीं रह जाएगा।

उम्मीद जगी है कि कश्मीर की स्थिति अब फिर से सुधर सकती है तो इस उम्मीद को कमजोर नहीं होने देना चाहिए। सारा दारोमदार भारत के जनमानस और भारतीय नेतृत्व पर है। विश्वास है कि पंडितजी ने इस पुस्तक में जिस **'झुलसते स्वर्ग'** का दर्द-भरा चित्र उकेरा है, और समस्या के समाधान के जो सुझाव दिए हैं, उसे पढ़कर भारत के नेताओं और अन्य सभी पाठकों को इस दिशा में सक्रिय होने की प्रेरणा मिलेगी।

विषय क्रम

पूर्व कथन

पुस्तक लिखने की योजना बनाकर यह पुस्तक नहीं लिखी गई है। 'आर्यजगत्' साप्ताहिक में कुछ लेख लिख कर कश्मीर की ज्वलन्त समस्या पर जनता का ध्यान खींचना चाहा था। पाठकों ने लेखमाला जारी रखने का आग्रह किया और अन्त में पुस्तकाकार रूप देने का भी। लिखने लगे तो बात बढ़ती गई।

लेख को निश्चित सीमा में ही समाप्त करना आवश्यक था। इसलिए एक सुविधा भी थी, और एक असुविधा भी। सुविधा यह कि बात संक्षेप में कहनी थी और जो प्रसंग प्रारम्भ किया है उसे उतनी ही सीमा में समाप्त करना था। असुविधा यह कि जब कोई प्रसंग उस सीमा में नहीं समा सका, तो उसे मण्डूक-प्लुति से अगले लेख में खींच कर लाना पड़ा। इससे कहीं कहीं पुनरुक्ति का आभास हो सकता है।

फिर भी यह पुस्तक कश्मीर का इतिहास नहीं है। न ही घटनाचक्र का पूर्वापर क्रम से विवरण है। हां, कश्मीर के इतिहास की और घटित घटनाक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा अवश्य है। पुस्तक के कथ्य का सार यह है कि कश्मीर मूलतः हिन्दू संस्कृति का केन्द्र रहा है। इस्लाम का आगमन महाकाव्य में क्षेपक की तरह है। क्षेपक निकाल देने पर महाकाव्य का शुद्ध रूप सामने आ जाएगा। पर युग ऐसा आ गया है कि क्षेपक ही पूरे महाकाव्य पर हावी हो चला है। युग का ही प्रभाव है कि कश्मीर का सूफीवाद भी आतंकवाद में बदल गया है। अब कश्मीर से जिस तरह हिन्दुओं को भारी संख्या में पलायन कर शरणार्थी बनकर दर दर भटकना पड़ रहा है, उस त्रासदी ने सारे पुराने समीकरण बदल दिए हैं।

पुस्तक में निरीह कश्मीरियों की गरीबी की चर्चा की गई है। यह आम देहाती जनता के लिए तो ठीक है, परन्तु वर्तमान सत्य यह है कि इस समय

कश्मीर की प्रति व्यक्ति औसत आय सारे भारत में सबसे अधिक है। कश्मीर में चरस की पैदावार के कारण इस आय में मादक द्रव्यों की तस्करी का भी हाथ है। इस तस्करी में बड़े सरकारी अधिकारियों की आतंकवादियों से सांठ गांठ है। कश्मीर में आतंकवाद उसी तरह नव-समृद्ध जनों का आन्दोलन है जिस तरह पंजाब का खालिस्तानी आन्दोलन। उन्हें पैसे या रोजगार की उतनी जरूरत नहीं जितनी सत्ता की जरूरत है, वह भी इसलिए कि जन-साधारण का मनमर्जी शोषण कर सकें। यह इस अर्थ-प्रधान युग की करामात है! पेट्रो-डालर का प्रलोभन और पाकिस्तान से प्राप्त शस्त्रास्त्र — यही तो वर्तमान आतंकवाद की जड़ हैं।

कुछ गलत धारणाएं और भी हैं जो इस समय समस्त राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त हैं। भारत सरकार की गलतियों का, जो मूलतः पं० नेहरू की गलतियां हैं, उल्लेख किया गया है। पिछले ४३ वर्षों से विभाजन के बाद पंजाब से आए शरणार्थी यदि आज भी खानाबदोश बने हुए हैं, तो इसका अपराध किसके सिर है? भारत के शेष भागों में सभी शरणार्थियों का कब का पुनर्वास हो चुका, बल्कि अधिकांश लोग तो पहले से कहीं अधिक अच्छी स्थिति में हैं। पर कश्मीर के ही पाक-अधिकृत क्षेत्रों से आए शरणार्थी आज भी अनाथ हैं। उनका अपराध इतना ही है कि वे हिन्दू हैं। यदि वे भी मुसलमान होते तो शेख अब्दुल्ला के शासन में उनको भी कश्मीर में शरण मिल जाती। अब तो ३७० अनुच्छेद के अधीन उनकी नियति बन्धक बन गई है।

एक भ्रम यह भी फैला हुआ है कि पं० नेहरू और शेख अब्दुल्ला के कारण ही कश्मीर का भारत में अधिमिलन हो सका। वस्तुस्थिति यह है कि श्री मेहरचन्द महाजन और कश्मीर-नरेश महाराज हरिसिंह ही इस विलय के मुख्य घटक हैं। पं० नेहरू ने उक्त दोनों व्यक्तियों से वितृष्णा के कारण ही इनके योगदान का अवमूल्यन किया और शेख अब्दुल्ला का अधिमूल्यन किया। यदि श्री महाजन लाखों कश्मीरियों को कत्लेआम से बचाने के लिए पाकिस्तान के समक्ष आत्मसमर्पण की धमकी न देते, तो पं० नेहरू और 'पं०' माउण्टबेटन अड़ंगा लगाने से बाज न आते। जब यह धमकी सुनकर

नेहरू ने महाजन को कमरे से निकल जाने को कहा तब सरदार पटेल ने ही हाथ के इशारे से उन्हें जाने से रोका और तभी शेख अब्दुल्ला ने अवसर का लाभ उठाते हुए नेहरू का हृदय परिवर्तन करने वाली चिट भेजी। नेहरू के लिए जैसे कश्मीर के प्रधानमंत्री और महाराजा से भी शेख का महत्व अधिक था। आखिर शेख पं० नेहरू को अपना 'बड़ा भाई' यों ही थोड़ी कहते थे। बाद में महाराजा को तो नेहरू ने 'भगोड़ा' बताया। महाजन के प्रति विरक्ति इस बात से प्रकट हुई कि संयुक्त राष्ट्र संघ में पाकिस्तान के विदेशमंत्री जफरुल्ला का जवाब देने के लिए मेहरचन्द महाजन को न भेजकर गोपाल स्वामी आयंगर को भेजा गया। पंजाब हाईकोर्ट में श्री महाजन जफरुल्ला के साथ काम कर चुके थे और उनकी नस नस से परिचित थे तथा कश्मीर के बारे में तो उनसे अधिक प्रामाणिक और कौन हो सकता था? पर अपने आपको 'संयोग से हिन्दू, संस्कार से मुसलमान और शिक्षा से अंग्रेज' कहने वाले नेहरू को महाजन का हिन्दुत्व 'छोटे भाई' की इच्छा के सामने नगण्य लगा। यदि मौलाना आजाद और रफी अहमद किदवई जैसे व्यक्ति आग्रह न करते तो नेहरू अपने 'छोटे भाई' को कभी गिरफ्तार भी न होने देते।

पं० नेहरू के द्विधा विभक्त व्यक्तित्व का विश्लेषण करना यहां अभीष्ट नहीं है। परन्तु इतना स्पष्ट है कि यदि गृहमंत्री के नाते सरदार पटेल को ही कश्मीर का मामला सौंपा जाता, तो कश्मीर की समस्या इस रूप में सामने न आती। पटेल कहीं अधिक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। जिस कौशल से उन्होंने भारत की अन्य रियासतों को भारत में विलीन किया था, वह उन्हीं का दाय था। नेहरू तो शुरू में निजाम हैदराबाद और गोवा पर कार्रवाई करने के भी पक्ष में नहीं थे।

कश्मीर समस्या देश के विभाजन से— खास तौर से द्विराष्ट्र सिद्धान्त— से उपजी है। यदि पाकिस्तान यह कहता है कि भारतीय नेताओं ने हृदय से देश का विभाजन स्वीकार नहीं किया था, वह केवल अंग्रेजों को हटाने के लिए किया था, तो गलत नहीं कहता। परन्तु भारतीय नेताओं में इस सत्य को स्वीकार करने का साहस नहीं है। अन्यथा द्विराष्ट्र सिद्धान्त को

स्वीकार न करना और देश का विभाजन स्वीकार करना— इन दोनों बातों में कोई संगति नहीं है।

हिन्दू और मुसलमान को अलग राष्ट्र मान लेने के विरोध में महात्मा गांधी का तर्क तो बड़ा स्पष्ट था। उनका कहना था कि मेरा लड़का हीरा लाल गांधी यदि अब्दुल्ला गांधी के रूप में मुसलमान बन जाता है, तो क्या मैं उसका बाप नहीं रहूंगा, या उसका राष्ट्र अलग हो जाएगा? इसीलिए वे सदा कहते रहे कि पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा। जब नेहरू और पटेल दोनों देश-विभाजन की आंग्ल-कूटनीति से सहमत हो गए, तो अन्त में गांधी जी भी झुक गए और उन्होंने कहा कि जब मेरे दोनों सिपहसालार सहमत हैं, तो अब मैं क्या कर सकता हूं।

नेहरू और पटेल विभाजन के लिए क्यों सहमत हुए? अन्तरिम सरकार में नेहरू प्रधानमंत्री और सरदार पटेल गृहमंत्री या उप-प्रधानमंत्री थे। मुस्लिम लीगं साझीदार थी। आधे मंत्री मुस्लिम लीग के थे। उन लीगी मंत्रियों ने जब प्रशासन के दैनन्दिन कार्यों में भी अड़ंगे लगाने शुरू किये तब दोनों ने खीझ कर यह सोचा कि इससे तो इनका अलग हो जाना ही अच्छा। अंग्रेज तो तैयार बैठे ही थे।

शायद नेहरू और पटेल के मन में यह बात भी रही हो कि आखिर पाकिस्तान होगा कितना। विशालकाय भारत की तुलना में एक निरा पिद्दी-सा देश, मुश्किल से भारत के एक प्रान्त के बराबर। अंग्रेजों का प्रश्रय हटते ही अपनी आर्थिक, सामाजिक और सैनिक दुर्बलताओं के कारण स्वयं बिखर जाएगा। नहीं तो हम अपनी सेना के बल पर पुनः इसे जीत लेंगे। जब मेहरचन्द महाजन ने पाकिस्तानी हमलावरों द्वारा कश्मीर पर कब्जा कर लेने की नौबत की चर्चा की थी, तब नेहरू ने यही तो कहा था—'कब्जा हो जाने दो, हम उसे वापिस जीत लेंगे।' पर महाजन इस झांसे में नहीं आए।

महात्मा गांधी ने तो रेलमंत्री गोपाल स्वामी आयंगर से कह ही रखा था—"मेरे लिए रेलगाड़ी तैयार रखो। भारत में शान्ति स्थापित होते ही मैं न जाने किस दिन पाकिस्तान के लिए चल दूं।" जिस गांधी ने अपने अनशन से कलकत्ता और बिहार के मुसलमानों को बहुसंख्यक हिन्दुओं के

हिंसात्मक प्रकोप से बचाया था और भारत सरकार के न चाहते हुए भी पाकिस्तान को ५६ करोड़ रु० दिलवाया था, उस गांधी के मन में यह विश्वास था कि पाकिस्तान के लोग मेरी बात अवश्य सुनेंगे और पुनः भारत के साथ मिलने के लिए तैयार हो जाएंगे। अहिंसा के देवता का यह स्वप्निल विश्वास कितना खरा था, इसकी परीक्षा नहीं हो पाई। क्योंकि पाकिस्तान जाने का क्षण आने से पहले ही उनकी हत्या हो गई। जैसे नियति को यही मंजूर था!

एक रहस्य और भी है— जो खुल जाता तो देश का विभाजन न हो पाता। जिन्ना को कैंसर था और इस रहस्य को जानबूझकर प्रयत्नपूर्वक उजागर नहीं होने दिया गया। शायद माउण्टबेटन को इसकी कुछ भनक लग गई थी, इसीलिए वे जल्दी से जल्दी विभाजन करके रंगमंच से गायब हो जाना चाहते थे। यदि नेहरू और पटेल को इसकी भनक लग जाती, तो कदाचित् कुछ दिन वे और धैर्य धारण कर लेते, क्योंकि जिन्ना के सिवाय और कोई पाकिस्तान की वकालत करने वाला इतना जबर्दस्त वकील नहीं था।

अब लगभग आधी सदी पहले के इन गड़े मुर्दों को उखाड़ने का क्या लाभ?

अन्तिम प्रकरण में कश्मीर की समस्या के हल के जो सुझाव दिये गये हैं, उनके प्रस्तोता हैं—श्री बलराज मधोक। प्रखर राष्ट्रवादी चिन्तक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाचक्र का अपने गहन इतिहास-अध्ययन की पृष्ठभूमि के साथ सर्वथा बेबाकी से विश्लेषण करने वाले श्री मधोक की तुलना अन्य किसी भारतीय राजनीतिज्ञ से नहीं की जा सकती। उनको इस बात की चिन्ता नहीं कि उनके समर्थकों की या विरोधियों की संख्या कितनी है। वे जो देशहित में ठीक समझते हैं उसे निश्शंक होकर कहते हैं, कहते ही जाते हैं। वे न झुकना जानते है, न निराश होना। 'निन्दन्तु नीति-निपुणाः' के मार्ग से गुजरते हुए उन्हें भारत के उज्ज्वल भविष्य में अमित और अमिट विश्वास है। हमने जितने भी पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और राज नेताओं से उनके सुझावों पर विचार विमर्श किया, उन सब ने खुले दिल से स्वीकार किया कि वर्तमान परिस्थिति में तो इन सुझावों को कार्यान्वित करने से ही कश्मीर की समस्या का समाधान सम्भव है। अपनी भी यही राय है। पाठक

भी उन सुझावों के गुणावगुणों पर निष्पक्ष दृष्टि से विचार करें। यदि उनमें सार हो, तो क्यों न उस दिशा में जनमत जागृत करके एक प्रबल जनान्दोलन चलाया जाए। आखिर समस्या का समाधान करने के लिए आस्मान के फरिश्ते धरती पर नहीं आवेंगे। धरती को स्वर्ग या नरक बनाना धरती के वासियों का ही काम है।

३० सितम्बर (आश्विन शुक्ला ११), १९९०
(७५ वें जन्मदिवस पर)

—क्षितीश वेदालंकार

जहां कारवां भूल जाते हैं रस्ता

वहीं से निकलती है मंजिल की राहें ।



विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुंगमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः॥

—मेघदूत

यक्ष अलकापुरी में स्थित अपनी प्रियतमा के पास अपना संदेश पहुंचाने के लिए मेघ को दूत बनाकर पहले उसे अलकापुरी का परिचय देते हुए कहता है— "हे मेघ! यदि तुम्हारे पास बिजली की चकाचौंध और सतरंगी इन्द्रधनुष है और उसके अन्दर पानी की चमकती हुई बूंदे हैं, तो वहाँ सुन्दर नारियां हैं, जीवन्त प्राकृतिक चित्र हैं, और हीरे-जवाहरात से जड़े फर्श हैं। यदि तुम्हारे पास गर्जन है तो वहां वाद्ययन्त्रों की ध्वनि है, यदि तुम इतनी ऊंचाई पर हो तो अलका के प्रासाद भी गगनचुम्बी हैं— इस प्रकार अलका तुम से हरेक चीज में होड़ कर सकती है।

धरती का स्वर्ग

फारसी का एक मशहूर शेर है—

अगर फिरदौस बरूए जमीनस्त।
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त॥

अगर धरती पर कहीं स्वर्ग है, तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है।

यह शेर, कहते हैं — लालकिले के दीवाने खास में भी अंकित है। पर हमने इसे हरिपुर हजारा (अब पाकिस्तान में) किले के द्वार पर भी अंकित देखा है। यह शेर सबसे अधिक चर्चित है कश्मीर के बारे में।

इसलिए उसे धरती का स्वर्ग कहा जाता है। कश्मीर को धरती का स्वर्ग कहने की परम्परा इस समय देश से बढ़कर विदेशों में और भी अधिक है। जिन विदेशियों को कश्मीर की घाटी में आल्प्स की पर्वत श्रेणियां और स्विट्जरलैण्ड की दृश्यावलि दिखाई दी, उन्होंने उसे सैरगाह समझकर पर्यटन-केन्द्र के रूप में प्रचारित किया और यह स्थान विश्व भर के पर्यटकों का प्रिय स्थान बन गया। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् घाटी के इस यश में और वृद्धि हुई और भारतीय पर्यटक भी भारी संख्या में कश्मीर जाने लगे। यह जानकर पाठकों को आश्चर्य हो सकता है कि इन भारतीय पर्यटकों में सबसे अधिक संख्या दक्षिण भारत के लोगों की होती रही है।

कश्मीर को सैरगाह और विलासिता का प्रमुख स्थान बनाने का श्रेय विदेशियों से भी पहले मुगल बादशाहों को देना होगा। हम उसे नूरजहां और जहांगीर की विहार-स्थली के रूप में जानते आए हैं। शालीमार और निशात बाग जैसे विशिष्ट उद्यान मुगल बादशाहों की ही देन हैं। नूरजहां के नाम से एक नूरीछम नाम का सुन्दर प्रपात है जिसके बारे में कहा जाता है कि उस सौन्दर्य-सम्राज्ञी को यह प्रपात बहुत पसन्द था और वह वहां जाकर काफी समय तक रहा करती थी। उस प्रपात की उड़ती फुहारों से जब सैंकड़ों इन्द्रधनुषों का निर्माण होता था तो उन्हीं रंगों के हिसाब से वह अपने केशपाश का श्रृंगार करती थी—ऐसा कहा जाता है। यह नूरीछम प्रपात मुगल बादशाहों के कश्मीर जाने वाले पुराने मार्ग पर पड़ता है।

यह इतिहास तो बहुत अर्वाचीन है। १६ वीं सदी में इस्लाम वहां आया। गत २००-४०० वर्षों के इतिहास को कश्मीर का शाश्वत इतिहास मान लेना वैसी ही भयंकर गल्ती होगी जैसी भारत के इतिहास में अंग्रेजों के ढाई सौ वर्षों के शासनकालीन इतिहास को ही भारत का स्थायी इतिहास मान लेना। जैसे भारत का अंग्रेजों और मुसलमानों से भी पहले हजारों वर्षों का जीवन्त इतिहास है, वैसे ही कश्मीर का भी। उन हजारों वर्षों के दीर्घ इतिहास में कुछ सौ वर्षों के इतिहास का क्या महत्व है? बूंद केवल बूंद है, वह समुद्र का स्थान नहीं ले सकती। पर कुछ लोग सिन्धु को भूल कर बिन्दु को ही महत्व देने में अपनी प्रतिभा का पराक्रम समझते हैं। उन पर दया आती है।

कश्मीर का इतिहास कश्यप ऋषि से जुड़ा है। कश्यप-मीर (या मेरु) ही बिगड़कर कश्मीर बना है। राजतरंगिणी के अनुसार, अर्जुन के प्रपौत्र और परीक्षित के पुत्र हरनदेव का यहां शासन था।

मौर्य साम्राज्य के काल में यह प्रदेश अशोक के अधीन रहा, तो उसने यहां हजारों मकान बनवाए, सैंकड़ों विहार और स्तूपों का निर्माण किया और घाटी में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ। श्रीनगरी के नाम से राजधानी की स्थापना भी उसी के समय हुई जो बाद में महाराज प्रवरसेन के नाम से प्रवरपुर और आज श्रीनगर के नाम से विख्यात है।

उसके बाद जब हूणों की आंधी आई तो मिहिरकुल इस प्रदेश का शासक बना। पर जब सम्राट् विक्रमादित्य ने और समुद्रगुप्त ने शकों और हूणों को परास्त कर दिया तो विक्रमादित्य के मंत्री प्रतापादित्य ने इस प्रदेश का शासन संभाला। विक्रमादित्य ने ही बाद में अपने मित्र मातृगुप्त को इस प्रदेश का राज्य सौंपा। कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि मातृगुप्त ही महाकवि कालिदास था। हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य का जिस अद्‌भुत कौशल से अपने काव्यों में महाकवि कालिदास ने रसग्राही चित्रण किया है, उससे इस अनुश्रुति को और बल मिलता है। तदनन्तर कश्मीर में कई प्रतापी राजा हुए जिन्होंने घाटी की सीमा से निकल कर दूरस्थ प्रदेशों तक अपने राज्य का विस्तार किया। इन राजाओं में महाराज प्रवरसेन, चन्द्रापीड और ललितादित्य जैसे राजा हुए जिन्होंने भारत से विद्वानों को बुलाकर यहां दर्शन, कला, धर्म, विज्ञान, वास्तुकला तथा अन्य कला-कौशलों का विस्तार किया और कश्मीर को भारतीय मनीषा और साधना के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित किया।

यही वह काल था जब कश्मीर में ऐसे कवि, वैयाकरण, साहित्यकार और दार्शनिक हुये जिन्होंने विद्वत्ता के क्षेत्र में समस्त भारत में अपनी धाक जमाई। पतंजलि मुनि के व्याकरण महाभाष्य के कैयट, मैयट और जैयट जैसे दिग्गज टीकाकार इसी प्रदेश में हुए। कल्हण तो लौकिक इतिहास के संस्कृत साहित्य में उपलब्ध एकमात्र ग्रन्थ राजतरंगिणी को लिखकर अमर हो गए। इसी कश्मीर में बिल्हण कवि हुए जिनके द्वारा रचित 'विक्रमांक

देव चरित' इतना लोकप्रिय हुआ कि कश्मीर से चलकर दक्षिण भारत में चालुक्य वंश के त्रिभुवन नरेश के दरबार में वे राजकवि बने। जल्हण नामक कवि भी कश्मीर का ही था। क्षेमेन्द्र का नाम तो संस्कृत साहित्य के किसी भी अध्येता से शायद ही अपरिचित हो— 'दशावतार चरित', 'समय-मातृका', 'जातकमाला', 'रामायण मंजरी' और सुप्रसिद्ध 'कवि कण्ठाभरण' नामक ग्रन्थों के रचयिता वही हैं। परन्तु क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य विचार चर्चा' लिखकर तो साहित्य में एक नया वैचारिक आन्दोलन ही चला दिया जो साहित्य में 'औचित्य' को ही सबसे अधिक महत्व देता है।

इसी युग में लक्षण ग्रन्थ भी लिखे गए जिनमें अलंकारों के अलावा शब्द की तीन शक्तियों— अभिधा, लक्षणा, और व्यंजना का मार्मिक विश्लेषण किया गया। इस दिशा में मम्मट का 'काव्यप्रकाश' आज भी सर्वोच्च मानक ग्रन्थ माना जाता है। साहित्य और इतिहास की विवेचना के प्रसंग में दर्शन ही अछूता क्यों रहता। कश्मीर में शांकर अद्वैत के स्थान पर शैव दर्शन का अधिक प्रचार रहा, जो वेदान्तियों के मायावाद के बजाय कहीं अधिक व्यवहारोपयोगी जीवनदर्शन है। कश्मीर का शैवदर्शन प्रत्यभिज्ञावाद का समर्थक है जो बौद्धों के शून्यवाद और शंकर के अद्वैतवाद से अधिक प्रेरणादायक सिद्ध हुआ। इसी काल में अभिनव गुप्त और वसुगुप्त की कृतियों ने कश्मीर को भारतीय मनीषा और संस्कृति का सिरमौर बना दिया। इसी युग में यहां शारदा विद्यापीठ स्थापित हुई जिसमें अध्ययन करने के लिए दूर दूर से जिज्ञासु विद्यार्थी निरन्तर आते रहते और स्वयं को सौभाग्यशाली मानते थे। यह शारदा पीठ उस युग में नालन्दा और तक्षशिला के विद्याकेन्द्रों से कम महत्वपूर्ण नहीं रहा होगा।

कश्मीर का यह विद्या-विलास रुका नहीं। जब जैनुल आबदीन जैसा योग्य प्रशासक आया, तब भी उसने इस परम्परा को जारी रखा। तब संस्कृत के साथ फारसी में भी ग्रन्थ लिखे जाने लगे। राजतरंगिणी और महाभारत का फारसी में अनुवाद हुआ। जब सुलतान शासक आए, तब भी यह परम्परा चलती रही। सुलतान शासक यद्यपि इस्लाम ग्रहण कर चुके थे, पर उनका इस्लाम कट्टरतावाद से सर्वथा दूर था। वहां सूफी मत का ही प्रचार

अधिक था। सुलतान स्वयं मूर्तिपूजक थे और उनके समय कश्मीर की राजभाषा संस्कृत थी। एक सुलतान बादशाह था-बहाउद्दीन, उसकी कब्र पर आज भी संस्कृत में ही उसका परिचय अंकित है। इन सुलतान बादशाहों के समय समस्त उच्च सरकारी पद हिन्दुओं को दिए जाते थे। पाठकों को आश्चर्य होगा यह जानकर कि कश्मीर में लगभग दो सौ वर्षों तक संस्कृत राजभाषा रही है और समस्त सरकारी कामकाज संस्कृत में ही होता रहा है। कश्मीरी भाषा के लिए जो लिपि उस समय स्वीकार की गई वह शारदा लिपि थी, जो ब्राह्मी लिपि और उससे निकली देवनागरी लिपि का मिलाजुला रूप है। कश्मीरी पण्डितों के बही खाते उसी शारदा लिपि में लिखे गए हैं। आजकल जिसे गुरुमुखी कहा जाता है और गुरुग्रन्थ साहब की लिपि के रूप में जिसे सिख देवनागरी से अधिक महत्व देते हैं, वह गुरुमुखी इसी शारदा लिपि की देन है।

इसके अतिरिक्त कश्मीर के जितने तीर्थ स्थान हैं — अमरनाथ, वैरीनाग, अनन्तनाग, कुक्कड़ नाग, मटन (मार्तण्ड), इच्छाबल, गन्धरबल आदि— उन सब में हिन्दू संस्कृति की छाप है। कश्मीर के इंच इंच पर वह छाप इतनी गहरी है कि बाद में आने वाले गैर-हिन्दू शासक भी उसे मिटा नहीं सके। कभी कभी तो ऐसा लगता है कि शेष भारत से भी अधिक भारतीय है कश्मीर। वह सदा भारत का अविच्छिन्न अंग रहा है।





कश्मीर की तरह भूस्वर्ग सारे हिमालय में सैकड़ों की संख्या में हैं। हिमालय आदि-अन्त यहां-वहाँ भू-स्वर्ग ही है। जहाँ जहाँ भी जंगल समाहित दुर्गम पर्वत श्रृंखला की अगल बगल से पहाड़ी नदियाँ गुजरती हैं, वहीं भू-स्वर्ग बन गया है। किन्तु कश्मीर की बात और है। यहाँ सब तरह के खाद्य, सब्जी और फल- फूल हैं। वहाँ के गाँवों में पैर रखते ही लगेगा बंगाल का कोई गांव है। वही कच्चे केले, वही खीरे, भिण्डी-तोरई, वही बैंगन-परवल और लौकी—सब कुछ वैसा ही। अदरक-मिर्चा, इमली-सहजन और हरे साग। नदियों में हैं सब मछलियाँ, लान की मचानों पर लौकी और कुम्हड़े की बेलें। वही आंगन और मिट्टी के घर, वही धनकुटी और खलिहान। वही मारी फूल और कच्चे अनारों की सुवास। वही दरिद्रता, रुग्णता और नग्नता, वही बीमारी। और सब की बगल में देख लीजिये अंगूर और सेब के बाग, बग्गूगोशा, खूबानी, बादाम और तरह तरह के मेवे, विशुद्ध घी-दूध, सुन्दर-सुगन्धित चावल। मछली-मांस, मक्खन, अण्डों की चारों तरफ बहुतायत। लेकिन पैसा है नहीं समग्र देश में। रोग भोगता है, गरीबी से मरता है कश्मीर। बाहर से बहुत से रुपये लेकर जो घूमने जाते हैं वे लौट कर कहते हैं उसे धरती का स्वर्ग।

'देवतात्मा हिमालय' से

नरक कुण्ड की ओर

हमने इन शब्दों के साथ पिछला लेख समाप्त किया था— "कश्मीर के इंच इंच पर हिन्दू संस्कृति की गहरी छाप है।" सारे कश्मीर में जिधर भी निकल जाओ, वहां देवस्थान और देवस्थान ही दिखाई देंगे। कहीं कृष्ण और राधा कृष्ण, कहीं राम लक्ष्मण और सीता, कहीं सत्यनारायण और सूर्य। पर्वत शृंखलाओं की ओर दृष्टि डालो— तो नाम मिलेंगे—हरमुख, हरमहेश, कृष्णगिरि, शंकराचार्य, हरिपर्वत, श्रीनाग, भैरवघाटी, अमरनाथ आदि। नदियों की ओर दृष्टि घुमाओ तो वितस्ता, चन्द्रभागा, कृष्ण गंगा,

नीलगंगा, दूधगंगा, रोमहर्षी, भृंगा, सहस्रा, रामविहारा, मधुमती आदि। नगरों की ओर नजर घुमाओ तो वहाँ मिलेंगे— अनन्त नाग, सुखनाग, नरनाग, नागमार्ग, अवन्तीपुर, बृजविहार, आशुनाग, रामपुर, रामवन, रामघाट, चण्डीगांव आदि। ताल सरोवरों की चर्चा करो तो वहाँ भी मिलेंगे—कृष्णसागर, विष्णुसागर, गन्धरबल, मानसबल, नरबल, बुद्धबल, अमरसायर, तरसायर आदि आदि।

संस्कृति, सभ्यता और स्थापत्य में कश्मीर है ऊपर से नीचे तक आर्य-हिन्दू और आर्य-बौद्ध। जो मुसलमान जनता नजर आ रही है उसका स्वभाव, आचरण, अभ्यास, जीवन-यापन, शारीरिक गठन, आकार, भाव-भंगिमा, आंखें और नासिका, सामाजिकता—सब कुछ है मुसलमान-विरोधी। उत्तर भारत व पश्चिमी पाकिस्तान के मुसलमान उनके सामने आकर खड़े हो जायें तो वे आश्चर्य में डूब जायेंगे। तातार, मुगल या पठान मुसलमानों को देखकर कश्मीरी अपने घर के द्वार बन्द कर लेंगे। मुगल जमाने के मुसलमानों के साथ उनका मेल आज भी नहीं हो पाया है। उनके सबसे निकट पड़ते हैं कश्मीरी हिन्दू, जैसे पूर्वी बंगाल के मुसलमानों के परम आत्मीय हैं पश्चिमी बंगाल के हिन्दू, क्योंकि दोनों एक ही रक्त की उपज हैं। राजनीति केवल बाहरी रंग है। अंदरूनी रंग तो है रक्तनीति।

महाभारत के पश्चात् लगभग साढ़े चार हजार वर्ष तक कश्मीर का जो भी इतिहास रहा है वह सदा हिन्दू संस्कृति से ओत प्रोत रहा है। परन्तु जब से इस्लाम का आगमन हुआ तब से उसके इतिहास में परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। जो प्रदेश कभी धर्म, साहित्य, संस्कृति और मानवतावाद के शिखर पर पहुंच गया था, महाराज अशोक ने जहाँ से अहिंसा और विश्वबन्धुत्व का संदेश देने के लिए सुदूरस्थ प्रदेशों में बौद्ध भिक्षु भेजे थे और जो सचमुच धरती का स्वर्ग था, उसमें नरक कुण्ड की ज्वालायें सुलगनी प्रारम्भ हो गईं। हूण नरेश मिहिरकुल ने आकर बौद्धों पर भीषण अत्याचार किए और उसने कश्मीर को श्मशान के रूप में परिणत कर दिया। मिहिरकुल ने बौद्ध विहारों को नष्ट किया, तो उसके अत्याचारों से तंग आकर बौद्ध भिक्षु तिब्बत और चीन की तरफ भाग गये और वहाँ उन्होंने अपने नये

बौद्ध मठों का निर्माण किया। श्रीनगर से कुछ मील दूर हरवन के अंचलों में आज भी उस जमाने के भू-गर्भस्थ बौद्ध विहारों के अवशेष देखे जा सकते हैं। चीनी परिव्राजक ह्वेन्त्सांग अपनी आंखों से कश्मीर का सर्वनाश देख गया था।

चौदहवीं सदी में आया खूँखार तातार जुल्फी कादिर खां। 'भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्।' उसके एक हाथ में नंगी तलवार और दूसरे हाथ में जलती हुई मशाल। उसके दानवीय कृत्यों से कश्मीर आग की लपटों से घिर गया। जब यहाँ से वापस गया तब अपने साथ वह पचास हजार ब्राह्मण नरनारियों को गुलाम बनाकर ले गया। मगर उसके उस रक्तरंजित पथ में भयानक बर्फीला तूफान आया और वह स्वयं अपने सब साथियों और उन पचास हजार निरीह नर-नारियों के साथ बर्फ में दब गया। हुंजा पर्वत, कोहिस्तान के मैदानो और पामीर के पठारों में उनके कंकाल आज भी मिल जाते हैं। उस जमाने में कश्मीर में ज्ञान था, विद्या थी, दर्शन तथा संस्कृति थी, साहित्य और व्याकरण था, पर क्षात्रशक्ति नहीं रही थी।

यह तो अनाचार की शुरुआंत थी। उसके बाद गजनी का महमूद आया, तातार लड़ाकुओं के और जत्थे आये और उसके बाद पठानों ने भीषण आक्रमण करके कश्मीर को हथिया लिया। इन सभी के शासन में भयंकर शोषण हुआ। पठानों के हाथों कश्मीरियों का उत्पीड़न लगातार सौ साल तक होता रहा। उनके कलंक की कहानियों से कश्मीर भरा पड़ा है। असद खां नाम का पठान इतना अत्याचारी था कि उसने हिन्दू देवताओं की मूर्तियों को तोड़ा, स्थापत्य और शिल्पकला के श्रेष्ठ प्रतीक मन्दिरों को ध्वस्त किया और मार्तण्ड, गणेशबल, बृजविहार आदि जनपदों को ध्वस्त कर दिया। वह कश्मीरी पण्डितों को बोरों में भर भर कर डल झील में फिंकवा देता था। वह स्वयं सुन्नी मुसलमान था, इस लिए शिया मुसलमानों को भी कश्मीरी पण्डितों की तरह ही बोरों में भर कर डल के हवाले कर देता था। एक अता मौहम्मद खां नाम का पठान हुआ जिससे कश्मीर के लोग अपनी लड़कियों के बारे में इतना डरते थे कि वे जानबूझकर उनके अंग भंग कर उन्हें कुरूप बना देते थे, ताकि उसकी नजर उन पर न पड़े।

इन्हीं दैत्यों के कुल में प्रह्लाद की तरह पैदा हुआ था, जैनुलआबदीन। वह सचमुच कश्मीरियों का मित्र था। उसने मन्दिरों की मरम्मत कराई, नहरें निकलवाईं और बाढ़ों के आतंक से कश्मीर को बचाने का उपाय किया। कागज, रेशम और शाल आदि के कारखानों की स्थापना की। फलों के बगीचे लगाये। फलस्वरूप कश्मीरियों ने भी उसे अपनी पलकों पर बिठाया। आज भी बहुत से इलाकों में उसके बारे में लोकगीत गाये जाते हैं। श्रीनगर में जैनाकदल के पास राष्ट्रीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा उसकी समाधि सुरक्षित है। परन्तु जैनुलआबदीन का शासन बहुत थोड़े समय रहा। उसके बाद फिर अत्याचारी मुगल कश्मीर पर हावी हो गये। कश्मीरी फिर अपमान और अत्याचार से प्रताड़ित होने लगे। गरीबी, बाढ़, अकाल और ऊपर से यह भयंकर अत्याचार। उनकी आखों के आंसू थमते नहीं थे।

अन्ततः १४ अक्टूबर १५८५ को सम्राट् अकबर के हिन्दू सेनापतियों ने कश्मीर पर विजय पताका फहराई। कश्मीरी जनता की सांस में सांस आया। हरिपर्वत स्थित पुराने किले की अकबर ने मरम्मत कराई। उसके पुत्र सलीम उर्फ जहांगीर ने बांग बनवाये। वैरीनाग में, नसीम में, शालीमार में और निशात में बने बाग उसी जहांगीर की अमर यादगार हैं। जिस चिनार के नाम से आज कश्मीर प्रसिद्ध है उस चिनार का बीज लाकर उसी ने कश्मीर में उसे पुष्पित पल्लवित किया। नूरजहां ने पत्थर की मस्जिद बनवाई। जहांगीर के पुत्र शाहजहां ने भी अपने पिता का अनुसरण करते हुए कश्मीर के विकास में अच्छा योगदान दिया। उसके बाद औरंगजेब के जमाने में कश्मीर पर फिर अत्याचार होने प्रारम्भ हो गये। कश्मीरी पण्डितों पर तरह तरह के अंकुश लगे। उनको जजिया कर देने के लिये बाध्य किया गया।

जब औरंगजेब की मृत्यु हो गई और मुगल दरबार आन्तरिक कलह से घिर गया, तो मुगल सरदारों की विलासिता की प्रवृत्ति, अनाचार और उत्पातों ने दानवीय रूप ग्रहण कर लिया। ऐसे अवसर को खूंखार अफगानी पठान क्यों चूकते। अठारहवीं सदी के मध्य में अहमदशाह दुर्रानी ने कश्मीर पर कब्जा कर लिया। इसके बाद साठ साल तक लगातार सर्वव्यापी विध्वंस का और नारियों के सतीत्व नष्ट करने का जो अभियान चला उस पर केवल

इस्लाम ही गर्व कर सकता है। उसके पाशविक अत्याचारों ने कोई वर्गभेद स्वीकार नहीं किया। हिन्दुओं का सर्वनाश उनका घोषित लक्ष्य था। पठान शासक इसी में अपनी शान समझते थे। हजारों निरीह कश्मीरी नर-नारियों को जबरदस्ती मुसलमान बनाया गया। जो मुसलमान बनने को तैयार नहीं हुए उन्हें जीते जी जमीन में गाड़ा गया, आग में झोंका गया, फांसी पर लटकाया गया, जंगली जानवरों के पिंजरे में फेंका गया या बोरों में भरकर डल झील में डुबा दिया गया। अभी तक डलझील के एक कोने का नाम है 'वटमजार'— अर्थात् हिन्दुओं की समाधि।

कश्मीर में अहिन्दुओं की संख्या बढ़ने का यही इतिहास है। परवर्तीकाल में जब वही धर्मान्तरित हिन्दू बढ़ते बढ़ते लाखों की संख्या में पहुंच गये तब उन्होंने स्वेच्छा से अपने समस्त परिवार के साथ वापस अपने पूर्वजों के धर्म में आना चाहा। परन्तु तब काशी के सनातनी पण्डितों ने उस परिवर्तन के लिए सहमति नहीं दी। आज जो कुछ हो रहा है, वह उसी भूल का प्रायश्चित्त है।

यह केवल इतिहास ही नहीं है, कश्मीर के हृदय का अन्दरूनी दर्द है। मगर उसका अन्त यहीं नहीं होता।



गीतं कोकिल ते मुदा रसविदः शृण्वन्ति कर्णामृतं
नो किंचिद्वितरन्ति ते तरुदलैरेव स्वयं जीवसि।
कर्णायुर्हरमुद्गिरन्ति विरुतं काकास्तु तेभ्यो बलिं
प्राज्ञा एव दिशन्ति हन्त धिगिदं वक्रं विधेः क्रीडितम्॥

हे कोयल, रसिक लोग कानों में अमृत घोलने वाले तेरे गीत बड़े प्रेम से सुनते हैं परन्तु उसके बदले तुझे कुछ भी नहीं देते, तू पेड़ों के पत्तों से ही अपना गुजारा करती है। दूसरी ओर जो कौवे कर्ण-कटु कांव-कांव का शोर मचाते हैं उन कौवों को बलि वैश्वदेव के नाम से नैवेद्य खिलाते हैं और वे लोग बड़े बुद्धिमान कहलाते हैं। यह विधाता की कितनी बड़ी विडम्बना है!

नरककुण्ड किसने बनाया

अभी तक हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि कश्मीर के एक एक इंच पर हिन्दुत्व की और भारतीय संस्कृति की इतनी गहरी छाप है कि उसे किसी भी हालत में मिटाया नहीं जा सकता। कश्मीर किस प्रकार भारतीय मनीषा का केन्द्र रहा है और वहां साहित्य, कला, दर्शन, व्याकरण, आयुर्वेद, तथा काव्य जैसे लक्षण-ग्रन्थ लिखे गये हैं उनकी तुलना भारत के किसी अन्य भाग से नहीं की जा सकती है। पिछले पांच हजार साल के इतिहास में से साढ़े चार हजार साल का इतिहास उक्त स्थापना का साक्षी

है। परन्तु उसके बाद का जो ५०० वर्ष का परवर्ती इतिहास है, वह काल के सिंधु में भले ही बिन्दु के समान हो, किन्तु कश्मीर को नरक कुण्ड में ढकेलने का उत्तरदायित्व केवल उसी कालखण्ड को है।

हम यह भी कह चुके हैं कि शुरू-शुरू में जो मुस्लिम बादशाह थे वे कश्मीर में भी भारतीय मनीषा का अपने पूर्वजों की तरह ही आदर करते आये और उनके शासनकाल में भी संस्कृत को वही महत्व प्राप्त था जो उनके पूर्वजों के समय में था। इसका भी एक विशेष कारण है। जब उस कारण की मीमांसा करते हैं तो हमारे समक्ष एक और अद्‌भुत तथ्य प्रकट होता है जिसकी ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है।

ग्यारहवीं सदी से लेकर १५वीं सदी का सारा भारत सामाजिक अव्यवस्था के घटाटोप से घिरा रहा है। ब्राह्मणों ने अन्य वर्गों को विद्या पढ़ने के अधिकार से वंचित कर दिया और स्वयं ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग के माध्यम से इस लोक की उपेक्षा करके परलोक की तरफ अधिक ध्यान दिया, तब राज और समाज में विशृंखलता पैदा होनी ही थी। बौद्ध धर्म के पश्चात् हीनयान, महायान, वज्रयान, तंत्रयान, सहजयान के रूप में अनेक तरह के वैचारिक सम्प्रदाय पैदा हुये जो आध्यात्मिकता और यौगिक विभूतियों के नाम पर जनता को बरगलाते हुए अन्त में वाममार्ग और भैरवी चक्र के रूप में परिणत हो गये। यही वह युग था जब जगन्नाथपुरी, कोणार्क और खजुराहो के मन्दिरों में अश्लील मूर्तियों को आध्यात्मिकता का अंग माना जाने लगा। वाम मार्ग के जो पंच-मकार हैं— मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन— इनकी दार्शनिक और आध्यात्मिक व्याख्या कुछ भी क्यों न रही हो, किन्तु व्यवहार में वे जन-साधारण में अनाचार के प्रचार का ही साधन बने।

तब देश में भक्ति काल का उदय हुआ। यह देखकर आश्चर्य होता है कि जनता की बौद्धिक जड़ता को दूर करने के लिए पन्द्रहवीं सोलहवीं सदी में जो आन्दोलन चला वह इस महान देश के केवल एक भाग में नहीं, किन्तु पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण में सर्वत्र समान रूप से और लगभग साथ साथ ही लहरा उठा। इसका मूल कारण हमें केवल यही प्रतीत होता है कि समस्त भारत की जनता और देश के सभी भाग सांस्कृतिक और

आध्यात्मिक एकता के ऐसे प्रबल सूत्र में बँधे हैं कि उसे आक्रमणकारियों के प्रबल प्रहार भी छिन्न-भिन्न नहीं कर सके। नहीं तो ऐसा कैसे होता कि जिस तरह दक्षिण भारत में अलवार सन्त, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य आदि आचार्य हुए वैसे ही महाराष्ट्र में सन्त तुकाराम, सन्त ज्ञानेश्वर, सन्त नामदेव और समर्थ गुरू रामदास हुए। बंगाल में चैतन्य देव, जयदेव और हरिदास हुए। आसाम में शंकरदेव और माधवदेव हुए। केरल में स्वाति तिरुमाल हुए। गुजरात में नरसी मेहता हुए। राजस्थान में मीरा और राजुल हुए। उत्तर प्रदेश में सूर, तुलसी और कबीर हुए। और पंजाब में गुरुनानक का आविर्भाव हुआ। जिनको भारतीय संस्कृति में कोई विशेषता दिखाई नहीं देती वे इस चमत्कार का क्या उत्तर देंगे? लगभग सारे देश के सभी भागों में एक साथ ही इतने सन्त भक्त कवि कैसे पैदा हो गए?

जब गुरु नानक का जिक्र आ ही गया तो उनसे सम्बंधित कुछ तथ्यों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। गुरूनानक का जन्म सन् १४६९ की कार्तिक पूर्णिमा को हुआ था। इस्लाम का प्रवेश इस देश में उससे पहले हो चुका था। उस युग में जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन, स्त्रियों की बेइज्जती, हत्याएं, लूटमार रोजमर्रा की बात बन गई थी। सिकन्दर लोदी ने बोधन को केवल इसलिये मरवा दिया था क्योंकि उसने कहा था कि मेरा धर्म भी इस्लाम जितना ही अच्छा है। गुरुनानक ने २० वर्ष की अवस्था में पीड़ा भरे हृदय से कहा था-"**पृथ्वी से त्याग उठ गया है। वह परिन्दों की तरह उड़ गया है। राजा कसाई बन गए हैं। चारों ओर रिश्वत का बोलबाला है। बिना रिश्वत के राजा के दरबार में भी सुनवाई नहीं होती।**"

सन् १५२१ में बाबर ने भारत पर आक्रमण किया और पंजाब के हजारों स्त्री-पुरुषों और बच्चों को मौत के घाट उतार दिया। उस समय गुरूनानक ने जैसा आक्रोश व्यक्त किया था उस पर आज बाबरी मस्जिद और राम जन्म भूमि के विवाद में ग्रस्त हिन्दू और मुसलमान दोनों को ध्यान देना चाहिए। गुरुनानक ने तब व्यथित हृदय से कहा था—

"ऐ सारे जहान के बनाने वाले! तू अपने को निर्दोष कैसे मान सकता

है? तूने ही बाबर के भेष में यमराज को भेजा है। यह भयंकर कत्लेआम, औरतों और बच्चों की करुण चीखें, तेरी दया क्यों नहीं जगातीं? ऐ दुनिया के रक्षक कहलाने वाले ! तू ही बता कि एक खूंखार शेर गरीब और असहाय हिरणों पर हमला करके उन्हें क्यों मार डालता है और तू चुपचाप बैठा यह सब क्यों देखता रहता है?"

क्या बाबर के नाम पर होहल्ला मचाने वाले गुरुनानक के इन शब्दों को झुठला सकते हैं ? बाबरी मस्जिद आन्दोलन के पैरोकार और स्वयं केन्द्रीय सरकार इतिहास के इस तथ्य को कैसे भूल गई ? क्या ऐसा अत्याचारी बाबर भारत के किसी भी बाशिन्दे का कभी आदर-पात्र बन सकता है? जामिया मिलिया के जिन छात्रों ने बाबर की ५०० वीं जन्म तिथि शान से मनाई थी, उन्हें आप क्या कहेंगे?

जिस भक्ति आन्दोलन की ऊपर हमने चर्चा की है उसकी विशेषता यह भी थी कि जहां उसने अमीर-गरीब की और सवर्ण असवर्ण की दीवार तोड़ी, वहां मजहब की दीवार भी तोड़ के रख दी। उसी भक्ति आन्दोलन ने अकबर के संरक्षक बैरम खां के पुत्र, बहादुर सिपाहसालार अब्दुल रहीम खान खाना को रहीम के नाम से, और रुस्तम खान पठान को रसखान के नाम से हिन्दी साहित्य में अमर कर दिया। मलिक मौहम्मद जायसी ने तो महारानी पद्मिनी की कथा को लेकर "पद्मावत" नाम से पूरा काव्य ही लिख डाला। इस भक्तिकाल में एक दो-नहीं, बल्कि ५० से भी अधिक ऐसे मुस्लिम कवि हुए जिन्होंने भक्ति और नीति से ओतप्रोत कविता लिखकर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। इन्हीं भक्त मुसलमान कवियों को लक्ष्य करके भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा था—"इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिक हिन्दू वारिए।"

भक्ति आन्दोलन का इस्लाम पर भी ऐसा जबर्दस्त असर पड़ा कि उसमें सूफी सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसका मुख्य स्वर आपसी वैमनस्य को मिटा कर एक परमात्मा की उपासना ही था। आज भी निजामुद्दीन औलिया की दरगाह पर और अजमेर शरीफ के उर्स पर हिन्दू और मुसलमान दोनो समान श्रद्धाभाव से जाते हैं। परन्तु मुसलमान शासक इन सूफी सन्तो को

पसन्द नहीं करते थे। इसीलिए औरंगजेब ने सरमद जैसे सूफी सन्त को मरवा दिया था— क्योंकि उसने कहा था—

बुतपरस्तम काफिरम अज अहलो ईमाने नेस्त।

—"हां मैं काफिर हूँ, मुझे बुतपरस्त भी कह लो, तुम सब लोगों का ईमान मेरा ईमान नहीं है।" उसी सन्त सरमद की समाधि दिल्ली की जामा मस्जिद के पास आज भी बनी हुई है।

कश्मीर के भी शुरू के मुसलमान शासक इसी सूफी विचार धारा से प्रभावित थे। जिस तरह के अन्य सभी भागों में सन्त कवि पैदा हुए उसी तरह कश्मीर में भी एक भक्त कवयित्री पैदा हुई, जिसका नाम था लल्लेश्वरी। उसी संत लल्लेश्वरी के लोकगीत आज भी कश्मीर की घाटियों में गूँजते हैं। परन्तु कश्मीर को नरक कुण्ड बनाने वाले तो १७वीं सदी के वे मुलसमान बादशाह हैं जो अपने आप को औरंगजेब और अयातुल्ला खुमैनी का वंशज बताने में गर्व अनुभव करेंगे।



कान्तं वक्ति कपोतिकाकुलतया नाथान्तकालोऽधुना
व्याधोऽधो धृतचापसज्जितशरः श्येनः परिभ्रामति।
इत्थं सत्यहिना हि दष्ट इषुणा श्येनोऽपि तेनाहतः
तूर्णं तौ तु यमालयं प्रति गतौ दैवी विचित्रा गतिः॥

कपोती व्याकुल होकर कपोत से कहने लगी— हे नाथ! अन्त समय आ गया है— नीचे धनुष पर बाण चढाए बहेलिया खड़ा है और ऊपर बाज मंडरा रहा है। इतने में ही बिल में से निकलकर सांप ने बहेलिये को डस लिया और उसके द्वारा छोड़े गए बाण से बाज भी मर गया। इस प्रकार व्याध और बाज दोनों ही यमलोक सिधार गए। दैव की कैसी विचित्र गति है!

देश-विभाजन तक

हम यहाँ कश्मीर का इतिहास लिखने नहीं बैठे हैं। परन्तु पाठकों को इतना अवश्य बतला देना चहते हैं कि यदि पिछले पाँच हजार साल के कश्मीर के इतिहास में से मुगल शासन काल का कुछ सौ वर्षों का क्षेपक निकाल दिया जाए, तो बचा रहता है केवल हिन्दू कश्मीर। आज भी कश्मीर के छोटे से छोटे गाँव में भी हिन्दुओं के देव स्थान और मूर्तिया मिल जायेंगे, जिनकी तुलना में मस्जिदों की संख्या सर्वथा नगण्य है। मुस्लिम शासन काल की कोई छाप कश्मीर पर नहीं है, यह अभिप्राय हमारा नहीं, किन्तु

वह छाप ऐसी नगण्य है कि सुदीर्घ इतिहास के महाकाव्य में उसे तुच्छ क्षेपक मात्र ही माना जा सकता है।

हम यह भी संकेत कर चुके हैं कि शुरू-शुरू में जो मुस्लिम बादशाह आये वे सूफी विचारधारा से प्रभावित थे इसलिए उनके शासन में भी संस्कृत को वही स्थान प्राप्त रहा जो हिन्दू राजाओं के काल में था। मुगल शासक बहाउद्दीन की कब्र पर संस्कृत के शिलालेख का उल्लेख हम कर चुके हैं। और जो महमूद गजनवी अपने आप को बुतशिकन कह कर सोमनाथ के मन्दिर को मटियामेट करने में शान समझता था उसके भी सिक्कों पर संस्कृत का लेख अंकित है। उसके सिक्कों पर लिखा है—

"अव्यक्तमेकं मोहम्मद अवतार नृपति महमूद"।

यह सीधा कुरान के "लाइलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद रसूल्लिाह" का अनुवाद है। गजनवी को परमात्मा के विशेषण के रूप में जिस व्यक्ति ने भी "अव्यक्त" शब्द का सुझाव दिया होगा वह निःसंदेह संस्कृत और दार्शनिक विचार-पद्धति का भी अच्छा पंडित रहा होगा। कहा जाता है कि यह सुझाव अलबेरूनी का था और यह सर्वविदित है कि वह इतिहास के साथ-साथ, संस्कृत, अरबी, फारसी का भी अच्छा पंडित था। गजनवी ने संस्कृत में कलमा के अनुवाद के साथ "नृपति महमूद" और जोड़ दिया जिससे यह ध्वनित हो कि पैगम्बर के बाद सर्वोच्च स्थान बादशाह महमूद गजनवी का ही है।

मुगल शासन काल में भी १७ वीं और १८ वीं सदी में जो शासक हुए उनके अत्याचारों की तुलना नहीं है। ये २०० वर्ष कश्मीर के इतिहास में ऐसा कलंक बन कर बैठे हैं कि कश्मीर का चैतन्य मन उनको कभी नहीं भूलेगा। उनसे पहले शकों, हूणों और तातारों के अत्याचारों को कश्मीर किसी तरह भूल चुका था, परन्तु पठान बादशाह असद खां, जुल्फी कादिर खां और अता मोहम्मद खां के अत्याचारों को कश्मीर कभी नहीं भूल सकता। इन शासकों ने कश्मीरी पंडितों को और शिया मुसलमानों को बोरों में भर भर कर डल झील में डुबाया। वह स्थान आज भी 'वट मजार' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके अत्याचारों से भयभीत होकर कश्मीर की बहुसंख्यक

हिन्दू जनता मुसलमान बनने पर मजबूर हुई। परन्तु इस बहुसंख्यक मुसलमान बने कश्मीरी समुदाय को इस्लाम ने दिया क्या ? उनका धर्म और संस्कृति छीनी, उनके पूर्वजों से उनका सम्बन्ध काटा, और उनके हाथों में पकड़ा दिया भीख का कटोरा। उन्हें 'हतो' (कुली और मजदूर) बनाकर बाहर से आने वाले सैलानियों की कुलीगीरी करके बख्शीश मांगते हुए गुज़र करने पर लाचार कर दिया। गरीब कश्मीर पहले से और गरीब बन गया। गरीब की जोरू की तरह कश्मीर का इन शासकों ने शोषण किया, दोहन किया और उनकी पीठ पर चाबुकों की बौछार की। कश्मीर की जनता त्राहि-त्राहि कर उठी।

इसी १७ वीं सदी की बात है। जब कश्मीरी जनता के लिए अत्याचार असह्य हो गये तब कश्मीरी पंडितों का एक दल गुरु तेग बहादुर की शरण में गया और आँखों में आंसू भरकर उनसे रक्षा की गुहार की। गुरु तेग बहादुर भी कश्मीरियों की व्यथा-कथा सुन कर विचलित हो उठे। उन्होंने कहा कि इसके प्रतिकार के लिए तो किसी को बलिदान देना पड़ेगा। गुरु तेग बहादुर का किशोर अवस्था का तेजस्वी सुपुत्र गोविन्दराय भी वहीं खड़ा था। उसने कहा—'पिताजी! आपसे बढ़ कर धर्मात्मा और हिन्दू जाति का रक्षक और कौन हो सकता है? इसलिये यह बलिदान तो आप को ही शोभा देता है।' यह इतिहास की अनोखी घटना है कि पुत्र अपने पिता को स्वयं बलिदान देने के लिए प्रेरित करता है।

इतिहास साक्षी है कि ११ नवम्बर सन् १६७० को दिल्ली में फव्वारे के पास गुरु तेग बहादुर का सिर काट दिया गया। गुरु ने सर दिया, पर सार नहीं दिया। उसी स्थान पर आज उनके अमर स्मारक के रूप में गुरुद्वारा शीश गंज अपनी छाती ताने खड़ा है। इस गुरुद्वारे से १०० कदम की दूरी पर वह सुनहरी मस्जिद है जिस पर खड़े होकर नादिर शाह ने दिल्ली में कत्लेआम का हुक्म दिया था। एक स्मारक है मानवता की रक्षा का और दूसरा स्मारक है मानवता के विनाश का। क्या ये दोनों स्मारक हिन्दुत्व और इस्लाम की भावना के प्रतिनिधि नहीं हैं? इतिहास ने गुरु तेगबहादुर को 'हिन्द की चादर' की उपाधि से विभूषित किया और नादिर शाह को 'हिन्द

का लुटेरा' घोषित किया। जिस बालक ने अपने पिता को बलिदान के लिये प्रेरित किया, वही बालक गोविन्दराय आगे जाकर गुरू गोविन्द सिंह के नाम से विश्वविख्यात हुए।

गुरू तेग बहादुर के बलिदान के पश्चात् हिन्दुओं में नवचैतन्य अवश्य आया, परन्तु मुसलमान बादशाहों के अत्याचार बन्द नहीं हुए। तब तक सिख शक्ति का उदय हो चुका था और इतिहास के रंगमंच पर अंग्रेज प्रकट हो चुके थे। पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह का राज्य स्थापित हो चुका था जिससे हिन्दुओं में भी आत्मविश्वास पैदा हुआ था। अन्त में मुस्लिम बादशाहों के अत्याचारों से तंग आकर कश्मीर के सरदार वीरबल ने लाहौर के सिख दरबार में अपील की और सन् १८१९ में सिख सेना ने कश्मीर पर कब्जा कर लिया। महाराज रणजीत सिंह ने अपने मंत्री गुलाब सिंह को कश्मीर का शासक बनाया, शेरसिंह और मियां सिंह गर्वनर बने। ध्यानसिंह पुंछ के राजा बने और सुचेत सिंह राम नगर के। तब तक कश्मीर पर अंग्रेजों की नजर भी पड़ चुकी थी। वे अपनी राजनैतिक चालबाजियां चलने लगे।

अंग्रेजों और सिखों की पहली लड़ाई सन् १८४६ में हुई। महाराज गुलाब सिंह की पूछ दोनों पक्षों में थी। उनके प्रयत्नों से दोनों में सन्धि हुई और यह तय हुआ कि सिख शासक अंग्रेजों को हरजाने के तौर पर एक करोड़ रु० की राशि देंगे। सिख शासक वह राशि नहीं दे सके तो उसके बदले व्यास और सतलज के बीच के पहाड़ी प्रदेश अंग्रेजों को सौंपने पड़े। अन्त में अमृतसर की सन्धि हुई जिसमें महाराज गुलाब सिंह ने अंग्रेजों को ७५ लाख रु० देना स्वीकार किया, जिसके बदले में अंग्रेजों ने भी उन्हें जम्मू-कश्मीर और गिलगित का अधिपति स्वीकार कर लिया। महाराज गुलाब सिंह वीर होने साथ साथ व्यवहार-कुशल भी थे और अपनी न्यायप्रियता के लिये विख्यात थे। कश्मीरी जनता ने उनका हृदय से स्वागत किया। परन्तु १८५७ के आते आते उनका स्वर्गवास हो गया।

गुलाब सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र रणवीर सिंह राजा बने जिनके नाम से अभी तक रणवीरसिंहपुरा बसा हुआ है। १८८५ में उनकी मृत्यु के

पश्चात् उनके पुत्र प्रतापसिंह कश्मीर के राजा बने। उनके काल में अंग्रेजों ने गिलगित एजेन्सी अपने कब्जे में कर ली। क्योंकि उनको रूस का भय सता रहा था इसलिए अपनी विश्व-राजनीति की चालों का भारत को मोहरा भी बनाने से वे बाज नहीं आये। १९२५ में महाराजा प्रताप सिंह की मृत्यु हो गई। उनकी कोई सन्तान नहीं थी इसलिए उनके भांजे हरिसिंह राजा बने और वे सन् ४८ तक कश्मीर के राजा रहे।

इसी बीच देश का विभाजन हो गया। अंग्रेजों की कूटनीति काम कर गई। सारे संसार में जहां जहां उनका वर्चस्व था वहां वहां विदा होते समय उन प्रदेशों का अंग्रेजों ने बंटवारा करके छोड़ा। दो चीन बने—एक चीन थी मुख्यभूमि— कम्युनिस्ट चीन, और दूसरा च्यांगकाई शेक का फारमोसा। दो कोरिया बने—उत्तरी कोरिया, दक्षिणी कोरिया। दो वियतनाम बने—उत्तरी वियतनाम, दक्षिणी वियतनाम। दो जर्मनी बने— पश्चिमी जर्मनी, पूर्वी जर्मनी। पूर्वी अफ्रीका के तीन टुकड़े हुए—केनिया, युगांडा, तंजानिया। हिन्दुस्तान का भी बंटवारा हुआ—एक भारत, एक पाकिस्तान। देश का विभाजन करवाकर भी जिन्ना को संतोष नहीं हुआ और उन्होंने अपना खेल खेलना शुरू कर दिया। विभाजन के पश्चात् किस प्रकार पाकिस्तान ने कबायलियों को शस्त्र आदि देकर कश्मीर पर आक्रमण करने के लिये भेजा और किस प्रकार कश्मीर का भारत में विलय हो जाने के पश्चात् भारतीय सेना ने कबायलियों को घाटी से खदेड़ कर जिन्ना के सपनों को चकनाचूर कर दिया, इसकी कथा अगले लेख में।



जो कश्मीर देखने आते हैं वे कश्मीरियों का जीवन देखना पसंद नहीं करते। वे रुपये बिखेर कर मनोरंजन खरीदते हैं। गन्दे घरों में फटे चीथड़े-बिछावन, उच्छिष्ट कोने कोने में, शिकारा और हाउस बोटों के तख्तों की ओट में, दुकानों के नीचे, हाट-बाजार गलियों में, बसों के अड्डे पर, वितस्ता के घाट घाट पर, पुलों के अगल-बगल, गृह उद्योगों की ओट में जो भूखी दरिद्रता, और निराश हताश नर-नारी एवं बच्चे चलते फिरते हैं— वे ही हैं सच्चे कश्मीरी। वे भीख मांगते हैं, टूरिस्टों के सामने हाथ फैलाते हैं। जिधर निकल जाओ— भिखमंगी और बख्शीश। दौड़ कर गाड़ी बुलाया— दो बख्शीश। रास्ता बताया— दो बख्शीश। साथ-साथ चले— शायद कुछ झूठन या बख्शीश मिल जाए। घरों की बहुएँ, खेत-खलिहानों के खेतिहर— दौड़े आए सड़क के किनारे, क्योंकि टूरिस्ट आ रहे हैं, शायद कुछ बख्शीश मिल जाए। आई टेढ़ी चितवन वाली शर्मीली किशोरी, आया हँसमुख बच्चा, आया अस्सी बरस का बूढ़ा—आई चारों तरफ से हिमालय और कश्मीर की संतानें। उन्होंने सुन रखा है कि इस रास्ते से यूरोप के टूरिस्ट गुजरेंगे, गुजरेंगे भारत के सेठ और महाजन— वे आशा लगाए पथों के किनारे आ खड़े हुए हैं। वे हैं भू-स्वर्गवासी। वे जानते नहीं राजनीति, जानते नहीं साम्प्रदायिक भेदभाव। वे जानते हैं सिर्फ मार खाने वाले दैन्य-दरिद्रता के नरककुण्ड कश्मीर को। मुट्ठी भर भात पाकर वे खुश हैं, उनकी यह भयंकर गरीबी देखकर कलेजा मुंह को आता है।

—प्रबोध कुमार सान्याल (बंगला के प्रसिद्ध साहित्यकार और पर्यटक)

कबायलियों का हमला

भारत के स्वतंत्र होने से पहले, १५ अगस्त, १९४७ की क्या स्थिति थी— यह देखने चलें। उस समय भारत में ५६५ रियासतें थीं जिनमें से १४० को पूर्ण सत्ता प्राप्त थी। समस्त भारतीय नरेश सर्वोच्च सत्ता के प्रतिनिधि ब्रिटिश-सम्राट् के अधीन थे, लेकिन अपने इलाकों में वे स्वेच्छाचारी

शासकों की तरह शासन करते थे। अधिकांश नरेशों की तत्कालीन भारत सरकार से संधियां थीं। अंग्रेज चाहते तो आसानी से इन रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना सकते थे। पर राज्यों को हड़पने की नीति का दुष्परिणाम १८५७ के प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में वे देख चुके थे। इसलिए उसके बाद अंग्रेजों ने नीति बदल दी और उन्हें भारत सरकार का मित्रराज्य बनाने के बजाय उनको सीधा सर्वोच्च ब्रिटिश साम्राज्य के साथ संधियों में बांध दिया।

जब भारत में स्वतंत्रता का आन्दोलन चला तो उसका असर रियासतों पर भी पड़ा। रियासती जनता भी अपने नरेशों की निरंकुशता के प्रति आक्रोश प्रकट करने लगी। वहां की जनता ने रियासती मामलों में कांग्रेस पर सहायता के लिए दबाव डाला। पर कांग्रेसी नेताओं ने रियासतों के अन्दरूनी मामलों में कोई दखल देना स्वीकार नहीं किया। बाद में नेहरू आदि नेताओं ने कहा कि स्वतंत्र भारत में तानाशाही और सामन्तवाद को कोई स्थान नहीं हो सकता क्योंकि वे बाहरी सत्ता द्वारा पोषित हैं। उसके बाद भारत की एकता और अखण्डता पर बल देते हुए कहा गया कि भारत की पूर्ण स्वराज्य की माँग में देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन की मांग भी शामिल है।

जब देश के विभाजन की योजना स्वीकृत हो गई तो देशी राज्यों के बारे में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के दृष्टिकोण में अन्तर और बढ़ गया। जून, १९४७ में लार्ड माउन्टबेटन ने राजनीतिक पार्टियों की बैठक में यह स्पष्ट कर दिया कि कैबिनेट मिशन की योजना के अन्तर्गत कोई भी रियासत भारत या पाकिस्तान में शामिल हो सकती है, किन्तु वह स्वतंत्र रहने का दावा नहीं कर सकती। तब जिन्ना ने इसका विरोध किया और कहा कि किसी भी देशी राज्य को किसी संविधान सभा में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता क्योंकि रियासतें पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य हैं। तब माउंटबेटन ने स्पष्ट किया था कि सैद्धान्तिक रूप से देसी राज्य अपना भविष्य निर्धारण करने को स्वतंत्र हैं, किन्तु उन्हें अपनी भौगोलिक परिस्थितियों का भी ध्यान रखना होगा, अपनी भौगोलिक बाध्यताओं से वे भाग नहीं

सकते। सरदार पटेल ने अपने एक बयान में यह भी स्पष्ट कर दिया था कि देशी राज्यों को १५ अगस्त, १९४७ से पहले ही भारत या पाकिस्तान डोमिनियन में शामिल होने का फैसला कर लेना चाहिए।

पर जिन्ना के इस कथन से कि देसी राज्य पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न हैं और उन्हें किसी भी डोमिनियन में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, कई रियासतों ने अपने आपको स्वतंत्र रखने का और किसी भी संविधान सभा में शामिल न होने का संकल्प किया। सबसे पहले त्रावणकोर रियासत ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया। उससे अगले दिन निजाम हैदराबाद ने भी अपने आप को स्वतंत्र घोषित कर दिया। जूनागढ़ और मानवदार ने तो बाकायदा पाकिस्तान में शामिल होने की घोषणा कर दी। जिन्ना ने जोधपुर नरेश पर भी डोरे डालने चाहे थे और उन्हें कोरा कागज देकर कहा था कि इस पर तुम जो भी शर्तें लिखना चाहो, पाकिस्तान उन्हें स्वीकार करेगा।

जुलाई के अन्त तक अपनी प्रजा के आग्रह पर त्रावणकोर भारत में शामिल हो गया। अन्त में, १५ अगस्त तक हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर — केवल ये तीन राज्य ही रह गए जो भारत में सम्मिलित नहीं हुए, शेष ५६२ रियासतें सरदार पटेल के राजनैतिक कौशल से भारत में शामिल हो चुकी थीं। बाद में हैदराबाद और जूनागढ़ भारत में कैसे शामिल हुए, उसकी कथा अलग है। हम यहाँ केवल कश्मीर की चर्चा कर रहे हैं।

कश्मीर केवल भारत और पाकिस्तान का ही पड़ोसी नहीं, बल्कि उसकी सीमाएं रूस, चीन, अफगानिस्तान, तिब्बत और सिकिंयांग से भी मिली हुई हैं, इसलिए उसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व भी है। उस समय कश्मीर में तीन राजनीतिक दल थे— मुस्लिम लीग, मुस्लिम कान्फ्रेंस और नेशनल कान्फ्रेंस। तीनों के दृष्टिकोण अलग अलग थे। मुस्लिम लीग कश्मीर को स्वतंत्र रखना चाहती थी। मुस्लिम कान्फ्रेंस उसे पाकिस्तान में शामिल करना चाहती थी। परन्तु नेशनल कांफ्रेंस उसके भारत-विलय के पक्ष में थी। उस समय कश्मीर के प्रधानमंत्री रामचन्द्र काक भी कश्मीर को स्वतंत्र रखने के पक्षपाती थे और महाराजा हरीसिंह को यही सलाह देते थे। अर्थात् वे भारत-विलय

के विरोधी थे। इसीलिए उन्होंने भारत-विलय के समर्थक, नेशनल कान्फ्रेंस के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला को गिरफ्तार तक कर लिया था। गांधी जी, माउन्टबेटन और नेहरू—तीनों अलग अलग कश्मीर गए, राजा को समझाने की कोशिश की, पर अन्त तक अनिश्चय की स्थिति से वे निकल नहीं सके। नेहरू को तो उन्होंने कश्मीर में घुसने पर गिरफ्तार भी कर लिया। माउन्टबेटन से बीमारी का बहाना बनाकर मिलने से इन्कार कर दिया। १२ अगस्त को कश्मीर नरेश ने पाकिस्तान और भारत दोनों की सरकारों को तार दिया कि कश्मीर चाहता है कि यथास्थिति करारनामा हो जाए। पाकिस्तान ने १४ अगस्त को कश्मीर की यथा स्थिति स्वीकार कर ली।

पर जिन्ना के मन में तो कुछ और था।

पाकिस्तान की नई बनी सरकार ने कश्मीर की आर्थिक नाकेबन्दी शुरू कर दी— उसको चावल, गेंहूँ, आटा, नमक, पैट्रोल और कपड़ा ले जाने वाले सब ट्रक रोक लिये। कश्मीर के प्रधानमंत्री ने ब्रिटिश सरकार से इस नाकेबन्दी की शिकायत की, पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया। पाकिस्तान ने पुँछ के मुसलमानों को भड़का कर विद्रोह कराया और कबायलियों को कश्मीर पर हमला करने के लिए भेज दिया।

कौन थे ये कबायली?

सन् १९४१ की बात है। विश्वयुद्ध चल रहा था। तभी सोवियत संघ के अन्तर्गत किरगिजी कज्जाकों में से तीन हजार खानाबदोश दस्यु मुसलमानों ने चीनी तुर्किस्तान को पार कर पश्चिमी तिब्बत पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने मानसरोवर के तटवर्ती आठ प्रसिद्ध मठों को लूटा और तीर्थपुरी का विध्वंस किया। आन्ध्र प्रदेश के निवासी स्वामी प्रणवानन्द उस समय वहीं थे। वे लगातार १५ वर्षों तक मानसरोवर के तट पर रहे और वहां रहकर उन्होंने कैलाश और मानसरोवर के प्रदेश का जैसा भौगोलिक और वैज्ञानिक अध्ययन किया, वैसा आजतक और किसी ने नहीं किया। उनकी अंग्रेजी में लिखी 'कैलाश और मानसरोवर' नामक पुस्तक आज भी अपने विषय की सबसे अधिक प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है। (वे अभी जीवित हैं और पिथौरागढ़ में रहते हैं। उनकी आयु इस समय सौ वर्ष के लगभग

है।) उन्होंने सब कुछ तब अपनी आँखों से देखा था।

जब लुटेरे दस्युओं का यह गिरोह लद्दाख पहुंचा तब इसके कब्जे में एक लाख से अधिक भेड़ें, चार हजार झब्बू (चंवर बैल), दो हजार घोड़े-खच्चर, पांच सौ राइफलें और बन्दूकें, हजारों रु० मूल्य की सोने-चांदी की देवमूर्तियाँ, जेवर-आभूषण, मणि-मालाएँ और स्वर्ण तथा रौप्य मुद्राएँ थीं। लद्दाख की सीमा पर पहुंचने पर उन्हें निश्शस्त्र करके ही भारत में प्रविष्ट होने की अनुमति दी गई। परन्तु कश्मीर-नरेश उन्हें अपने राज्य में बसाने को तैयार नहीं थे। उस समय ब्रिटिश और रूस में मित्रता थी इसलिए अन्त में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें सीमाप्रान्त स्थित हजारा जिले में रहने की अनुमति दी और उनके खर्च का भी जिम्मा उठाया। जब हैदराबाद रियासत के और भोपाल रियासत के मुसलमान नवाबों को इन कज्जाकों के बारे में पता लगा, तो वे दोनों अपनी अपनी रियासतों में इन खानाबदोश डाकुओं को रखने और अपनी सेना में भर्ती करने को तैयार थे। पर अंग्रेजों ने इसे ठीक नहीं समझा और उन्हें हजारा जिले में रखना ही उपयुक्त समझा। सन् ४८ में इन्हीं कबायली दस्युओं को रिश्वत देकर तथा सुन्दर कश्मीरी स्त्रियों का प्रलोभन देकर पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए भेजा था। शस्त्रास्त्रों से तथा अन्य तरह से उनकी सहायता करने के लिए पाकिस्तानी फौज इन कबायलियों की पीठ पर थी ही। जिनका पेशा ही लूटमार और हत्या हो, उन खानाबदोशों को यदि धरती के स्वर्ग की अप्सराओं का प्रलोभन मिल जाए तो दस्यु दल को और क्या चाहिए। हैवानियत को पूरा करने का इससे बढ़कर इन्तजाम क्या होगा।



सम्राट् अकबर के नवरत्नों में से एक थे अबुल फजल। उन्होंने कश्मीर के बारे में लिखा था—"यहां जो सबसे अधिक श्रद्धा के पात्र हैं, उन्हें ऋषि कहते हैं। वे परम स्वतंत्र हैं, किसी भी प्रकार के प्रचलित संस्कार और कर्मकाण्ड के कायदे-कानून उन पर लागू नहीं होते। कश्मीर में उनकी संख्या कम से कम दो हजार है। वे शाकाहारी हैं और नारी-संग नहीं करते। पहाड़ों, मन्दिरों, और तपोवनों में वे रहते हैं। अकबर ने तीन बार कश्मीर-विजय की कोशिश की, किन्तु उसे मुंह की खाकर लौटना पड़ा। बहादुर चकों से वह पार नहीं पा सका। इसका मूल कारण इन ऋषियों की तपस्या और योग बल था।"

आज भी कश्मीर के अनेक नाम हैं, जैसे—ऋषि भूमि, योगी स्थान, शारदापीठ और शारदा-स्थान आदि। पर बादशाह जहांगीर द्वारा प्रचलित "धरतीका स्वर्ग" नाम सबसे अधिक मशहूर हो गया।

कश्मीरी मुसलमानों की खास परम्परा रही है। वे नमाज नहीं पढ़ते, रमजान के दिनों में रोजा नहीं रखते, परमात्मा को अल्लाह के बजाय परमात्मा कहना पसन्द करते हैं। इनका इस्लाम और तरह का है। उन्हें सम्प्रदायवाद ने अपना शिकार नहीं बनाया। मूल कश्मीर में कम से कम ५१ हिन्दू तीर्थ हैं जिन्हें केन्द्र मानकर ५१ पुराण माहात्म्य रचे गये हैं। वहां के उच्च शिक्षित मुसलमान आज भी पण्डित कहलाते हैं। वहां की औरतें बुर्का नहीं पहनतीं। वहां का एक भी स्थान ऐसा नहीं जिसका नाम गैर-हिन्दू हो।

भारत में विलय

१४ अगस्त को जब पाकिस्तान ने सत्ता सम्भाली तब शायद सबसे पहला निर्णय उसने कश्मीर-नरेश द्वारा भेजे गये यथास्थिति करारमाने के सम्बन्ध में ही किया था। उसने कश्मीर की यथास्थिति रखना स्वीकार किया और यह भी गारण्टी दी कि उसको भेजा जाने वाला कोई सामान रोका नहीं जायेगा। उस समय कश्मीर जाने का मुख्य मार्ग रावलपिण्डी और मुजफराबाद

होकर ही था। परन्तु पाकिस्तान के मन में पाप था इसलिए उसने अपने वायदे का पालन नहीं किया और अक्तूबर के शुरू में ही कश्मीर की आर्थिक नाकेबन्दी शुरू कर दी। भारत की ओर से जो सामान उन संकट के दिनों में कश्मीर को भेजा गया था, उसमें चार मास के कोटे के लायक चावल, दो महीने के कोटे के लायक गेहूँ, कपड़े के १८९ गट्ठर, १० वैगन नमक और ३८४ हजार गैलन पेट्रोल था। कश्मीर ने पाकिस्तान को याद भी दिलाया कि यथास्थिति को स्वीकार करते हुए सामान की सप्लाई जारी रखने का वचन दिया गया था। पर पाकिस्तान का जन्म उस नक्षत्र में हुआ ही नहीं जिसमें उसकी कुण्डली में सच बोलने की बात हो। उल्टे पाकिस्तान ने यह आरोप लगाया कि पुंछ और राजौरी में कश्मीरी सेना मुसलमानों की हत्या कर रही है, इसलिए ट्रकों के ड्राइवर कश्मीर जाने को तैयार नहीं।

यह आरोप सरासर उल्टा था। स्वयं पाकिस्तान ने पुंछ और राजौरी (सलजापुरी) के मुसलमानों को भड़का कर वहां विद्रोह प्रारम्भ करवा दिया था। इन इलाकों में मुसलमानों की संख्या अधिक थी इसलिए इन्हें हिन्दू-बहुल बना देना सम्भव ही नहीं था। फिर जिस मार्ग से सामान कश्मीर जा रहा था उस के बीच में पुंछ और राजौरी कहीं नहीं आते, यह कश्मीर का भूगोल जानने वाला हर व्यक्ति जानता है। परन्तु पाकिस्तान के इस कदम से कश्मीर-नरेश समझ गये कि अब पाकिस्तान की ओर से रियासत पर हमला होने वाला है। इसलिए उन्होंने अक्तूबर सन् १९४७ को पाकिस्तान को साफ लिख दिया कि यदि वे नाकेबन्दी नहीं हटाते और घुसपैठ नहीं रोकते तो कश्मीर की सरकार के पास दूसरे लोगों से सहायता लेने के सिवाय और कोई चारा नहीं बचेगा।

कबायलियों ने २२ अक्तूबर १९४७ को ट्रकों और मोटरों में बैठकर कश्मीर पर हमला कर दिया। उनका इरादा सीधा श्रीनगर पहुंचकर उस पर कब्जा करने का था। इसलिये बड़ी तेजी से वे लूटपाट करते और विध्वंस करते आगे बढ़ते जा रहे थे। २२ अक्तूबर को सवेरे साढ़े चार बजे २००० की संख्या में उन्होंने मुजफराबाद में प्रवेश किया। कश्मीरी सेना उनका मुकाबला नहीं कर सकी। उन्होंने सरकारी दफ्तर लूटे, उनको नष्ट किया

और मन्दिरों गुरुद्वारों को जलाया। २३ अक्तूबर को चिनारी पर कब्जा किया और २४ को उड़ी पर। २५ को श्रीनगर को बिजली सप्लाई करने वाले मोहरा बिजलीघर को नष्ट किया और २६ को वे सेवेरे १० बजे तक बारामूला पहुंच गये। वहां से श्रीनगर केवल ३४-३५ मील दूर था। वे चाहते तो उसी दिन श्रीनगर पहुंच सकते थे। परन्तु बारामूला में लूट और अय्याशी के सामान ने उन्हें फंसा लिया। हमलावरों की दूसरी टुकड़ी ने शाहपुर, बांडीपुर, अप्डवारा, और गुलमर्ग की तरफ से घाटी पर हमला किया।

बारामूला की आबादी कुल १२,००० थी। इन दस्युओं ने वहाँ कितना भयंकर विध्वंस किया और अपने आपको इस्लाम का रक्षक कहने वालों ने खुद अपने हाथों कितने मुसलमानों को मारा, उसका अन्दाज केवल इसी बात से किया जा सकता है कि सारी आबादी में केवल १००० आदमी जिन्दा बचे और ११,००० आदमी हिंसा के शिकार हुए। कितनी महिलाओं ने अपना सतीत्व बचाने के लिए झेलम नदी में कूद कर प्राण दिये, इसकी कोई गिनती नहीं है। दस्युओं ने न मंदिरों को छोड़ा, न गुरुद्वारों को, न गिरजाघरों को, न अस्पतालों को। नर्सों से पहले बलात्कार किया और उसके बाद उन्हें गोली मार दी। यही हाल अस्पताल की मदर सुपीरियर का हुआ और यही हाल अस्पताल के इंचार्ज कर्नल डाइक्स का हुआ। गिरजाघरों की ननों को एक कतार में खड़ा करके गोली से उड़ा दिया गया। एक हमलावर दस्यु जब दवादारू के लिये किसी डाक्टर के पास गया तो डाक्टर ने उसकी अंगूलियों में १५ अंगूठियां देखीं। पूछा—इतनी अंगूठियां कहा से मिलीं। उसने बड़े गर्व से बताया कि मैंने १५ आदमियों को मारकर उनके हाथों से निकाली हैं।

२४ अक्टूबर को कश्मीर-नरेश ने विवश होकर भारत सरकार से सहायता की अपील की। २५ अक्तूबर को गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन की अध्यक्षता में रक्षा समिति की बैठक हुई जिसमें कश्मीर की स्थिति पर विचार किया गया। उसी बैठक में जनरल लोकहार्ट ने पाकिस्तानी सेना के मुख्यालय से प्राप्त एक तार भी पढ़ कर सुनाया जिसमें कहा गया था कि हमलावर बारामूला तक पहुंच चुके हैं। उस समय पाकिस्तानी सेना का मुख्यालय

अंग्रेजों के हाथ में ही था क्योंकि पाकिस्तान के प्रधान सेनापति जनरल ग्रेसी थे। रक्षा समिति ने यह तो माना कि नर-संहार को रोकना आवश्यक है और उसके लिए आवश्यक सहायता दी जानी चाहिए, परन्तु माउन्टबेटन ने साफ कर दिया कि भारत सरकार तब तक अपनी सेना वहां नहीं भेज सकती जब तक कश्मीर भारत में सम्मिलित न हो जाये। तब स्थिति का अध्ययन करने के लिए श्री बी. पी. मैनन को श्रीनगर भेजा गया। इसी बीच क़श्मीर के तत्कालीन प्रधान मंत्री मेहरचन्द महाजन दिल्ली पहुंचे। वे निश्चय करके आये थे भारत सरकार सहायता नहीं देगी तो हम पाकिस्तान जाकर आत्मसमर्पण कर देंगे क्योंकि निर्दोष लोगों का कत्लेआम नहीं देखा जा सकता।

श्रीनगर में सन्नाटा छाया हुआ था। पूरी घाटी दहशत में डूबी हुई थी। लोगों में भगदड़ मची थी। सभी अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर भाग रहे थे। मंत्रीमण्डल और कश्मीर-नरेश सर्वथा हताश हो चुके थे। पुलिस कहीं दिखाई नहीं देती थी। मैनन हवाई अड्डे से सीधे महाराज के पास गये और उनको श्रीनगर छोड़कर जम्मू जाने की सलाह दी तथा खुद दिल्ली लौट कर उन्होंने रक्षा समिति को अपनी रिपोर्ट दी। तब रक्षा समिति ने फैसला किया कि भारत क़श्मीर-नरेश की सहायता की प्रार्थना को स्वीकार करे और उनके भारत विलय के प्रस्ताव को मन्जूरी दे। औपचारिक कार्यवाही पूरी करने के लिए मैनन वापस जम्मू लौटे। वे आधी रात को जम्मू पहुंचे। उससे थोड़ी देर पहले ही महाराजा सोने से पहले अपने अंगरक्षक से कह गए— यदि मैनन आ जायें तो मुझे मत जगाना क्योंकि तब यह समझ लिया जायेगा कि भारत क़श्मीर की सहायता करने को तैयार है। और यदि न आयें, तो मुझे सोई हुई हालत में ही गोली मार देना।

२६ अक्तूबर १९४७ को महाराजा हरिसिंह ने विलय-पत्र पर हस्ताक्षर किए। २७ को भारत सरकार ने उसे स्वीकार किया और भारत की सेना की एक टुकड़ी कश्मीर पहुंच गई। श्रीनगर का हवाई अड्डा यदि कबायलियों के हाथ चला जाता तो भारतीय सेना का वहां उतरना मुश्किल हो जाता। परन्तु दस्युदल तो उस समय बारामूला में जश्न मना रहा था।

इस प्रसंग को समाप्त करने से पहले कश्मीर के प्रधान मंत्री श्री महाजन द्वारा लिखित एक विवरण उल्लेखनीय है—

"मैं भारत के प्रधानमंत्री और उपप्रधानमंत्री से मिला और राज्य की खतरनाक और गम्भीर स्थिति से उनको अवगत कराया। मैंने सैनिक सहायता की याचना की और उनसे कहा कि सेना को तुरन्त हवाई जहाज से भेजा जाये, वरना पूरा श्रीनगर नष्ट हो जायेगा और साथ ही उन सब चीजों का, जिन्हें हम अमूल्य समझते हैं, विनाश हो जायेगा। मुझसे कहा गया है कि तुरन्त फौज कैसे भेजी जा सकती है। मुझे विश्वास दिलाया गया कि यदि श्रीनगर पाकिस्तानी आक्रमणकारियों के कब्जे में आ भी जाता है तो बाद में वापिस लिया जा सकता है। मैं इस दलील से प्रभावित नहीं हुआ और मैंने दृढ़ता से काम लिया। मैंने कहाः "सेना भेजिये, कश्मीर का विलय स्वीकार कीजिये और लोकप्रिय पार्टी को जो भी अधिकार देना चाहें, दे दीजिये। किन्तु आज ही शाम को सेना अवश्य हवाई जहाज से श्रीनगर भेजिये। वरना मैं जिन्ना के पास जाकर उनसे संधि की शर्तें तय करूंगा, क्योंकि श्रीनगर को बचाना आवश्यक है।

"इस पर प्रधानंत्री नेहरू गुस्से में आ गये और मुझसे कमरे के बाहर निकल जाने को कहा। जैसे ही मैं कमरे से बाहर निकलने के लिये उठा, एक घटना हो गई और उसने मुझे और कश्मीर को पाकिस्तान के हाथ में पड़ने से बचा लिया। शेख अब्दुल्ला ने, जो प्रधानमंत्री के घर में ही ठहरे हुए थे, मेरी और नेहरू की उक्त बातचीत सुन ली और स्थिति को गम्भीर देखकर एक पर्ची प्रधानमंत्री नेहरू को भेजी। पंडित जी ने पढ़ कर मुझे कहाः शेख साहब का भी यही मत है जो आपका है। इसके बाद पंडित जी का रवैया बिल्कुल बदल गया। मैं इस सामयिक सहायता के लिये शेख साहब का हमेशा कृतज्ञ रहा हूँ। इस प्रकार काश्मीर पाकिस्तान के हाथ जाने से बच गया।"



ऐसा तीर लगा जालिम का गया कलेजा चीर।
उजड़ा नूर सरूर साथ में सुख-सुहाग सिंगार।
उजड़ गई जीवन की जोती उजड़ गया संसार॥
जैसे नदी बिना पानी के, जैसे जल विन मीन
जैसे पंछी बिना पंख के, नारी पुरुष-विहीन॥
विरह वेदना दुनियां के दुःख, विधवा की तकदीर।
उजड़े माँ की कोख रात दिन, छिने बहन से भाई।
बच्चे रोज अनाथ हो रहे जो कुछ है दुःखदायी॥
युवा पुत्र की चिता फूँकते प्रतिदिन बूढ़े बाप।
हे भगवान ! उजागर हो गये कौन जन्म के पाप॥
पड़ा न्याय के मुँह पर ताला पैरों में जंजीर।
कर लो कोई यत्न समय से कर लो कुछ तदवीर।
पल पल इन पगले नयनों से बहे पिघल कर पीर॥

—विजय निर्बाध

चोरी और सीनाजोरी

बारामूला में पहुंच कर दस्युओं ने जैसी अमानवीय नृशंसता का परिचय दिया, वह इतिहास में शायद ही देखने को मिले। सारा शहर जल कर खाक हो गया था। सड़कों पर चारों तरफ ध्वंस के स्तूप खड़े थे। एक विशाल अग्निकुण्ड बना था जिसमें सैंकड़ों नर-नारियों ने बेइज्जती से बचने के लिए अपनी आहुति दी थी। कितनी ही नारियों ने भाग कर वितस्ता की गोद में शरण ली थी। अनगिनत औरतों के खून से लथपथ शव नालियों के किनारे पड़े सड़ रहे थे। पत्थरों पर पटक-पटक कर बच्चे-बच्चियों की हत्या

की गई थी। जिस दिन मौत की सी शान्ति लौटी, तब देखा गया कि बारामूला के इस श्मशान में मृतकों को रोने वाला भी कोई नहीं बचा है। जब दस्यु-दल वहां से भागा तो अपने साथ सैकड़ों किशोरियों और नवयौवनाओं को भी ले गया।

बारामूला— जिसका प्राचीन नाम वराहमूल है—इसी अत्याचार का इतिहास नहीं है। वह उस वीरता का भी इतिहास है जो वहाँ के कश्मीरी मुसलमानों ने हमलावरों के अवरोध में प्रदर्शित की थी। इनमें सबसे प्रमुख है— कश्मीर-केसरी मकबूल शेरवानी। इस वीर के दुमंजले मकान में आग लगाकर, उसके परिवार के प्रत्येक बच्चे और नारी की हत्या कर दी गई। इसके बाद दस्युओं ने शेरवानी से सवाल किया—"बोलो, पाकिस्तान को आत्मसमर्पण करने को तैयार हो या नहीं?" शेरवानी ने घृणा से मुँह फेर लिया। तब दस्युओं ने उसी के मकान की दीवार में कीलों से ठोक कर शेरवानी के शरीर को गोलियों से छलनी कर दिया।

तभी इस विपदा के दौर में भारतीय सेना पहुंच गई। यदि भारतीय सेना के पहुंचने में कुछ घण्टे का भी विलम्ब हो जाता और श्रीनगर का हवाई अड्डा दस्युओं के कब्जे में चला जाता, तो भारतीय सेना का वहाँ उतरना ही मुश्किल हो जाता। अग्रिम टुकड़ी ने श्रीनगर पहुंचते ही बारामूला की ओर प्रस्थान कर दिया और जाकर कबायलियों को खदेड़ना प्रारम्भ कर दिया। लुटेरे चाहे संख्या और बल में कितने ही हों, पर जब ऐसे बहादुरों से उनका वास्ता पड़ता है जो मजलूमों की रक्षा के लिए जान हथेली पर लेकर निकलते हैं, तो उन लुटेरों से बढ़कर कायर भी दुनिया में कोई नहीं होता। क्योंकि उनके सामने कोई मानवीय नैतिक आदर्श नहीं होता इसलिए भागते भी उन्हें देर नहीं लगती।

भारतीय सेना की टुकड़ी ने पहुंचते ही मोर्चा संभाला, और यथोचित जवाब देना प्रारम्भ किया। टुकड़ी के नायक थे लेफ्टिनेंट कर्नल डी० के० राय। कबायलियों की संख्या बहुत अधिक थी। फिर भी कर्नल ने एक इंच भी पीछे हटने की बात मन में नहीं सोची। वे वहीं दस्युओं की गोली से घायल होकर खेत रहे। जिस स्थान पर उनके खून की पहली बूंद गिरी वहीं

एक काले पत्थर का स्मृतिचिन्ह लगा है जिसके ऊपर तारीख लिखी है—२७ अक्तूबर, १९४७ — कश्मीर के भारत-विलय और कश्मीर के इतिहास में नया प्राणदायी अध्याय जोड़ने की अमर तारीख।

अगले दिन भारत ने पाकिस्तान को कश्मीर के भारतविलय की और अपनी सेना भेजने की तार द्वारा सूचना दे दी। अब भारत के लिए यह एक ऐसे राज्य का मामला था जो भारत में सम्मिलित हो चुका था और जिस पर दूसरे देश ने अपना सक्रिय समर्थन देकर हमलावरों को आक्रमण के लिए भेजा था एवं वे हमलावर राज्य के लोगों को बेरहमी से मौत के घाट उतार रहे थे। इसलिए भारत का यह पहला नैतिक कर्तव्य था कि वह हमलावरों को मार भगावे। पाकिस्तान के लिये वह ऐसे राज्य का मामला था जिसे पाकिस्तान येन-केन प्रकारेण हस्तगत करना चाहता था, पर जो अब उसकी आशाओं के विपरीत भारत में सम्मिलित हो गया था — इसलिए अब यदि पाकिस्तान कुछ नहीं करेगा तो संसार की दृष्टि में कश्मीर का भारत-विलय पूर्ण और सर्वमान्य हो जायेगा। यदि पाकिस्तान कबायलियों को सहायता न दे, तो इसका अर्थ यही लगाया जाएगा कि पाकिस्तान ने भी कश्मीर का भारत-विलय स्वीकार कर लिया है।

कश्मीर के विवाद का जन्म यहीं से हुआ। भारत का कदम नैतिक और वैधानिक सभी दृष्टियों से उचित था, परन्तु पाकिस्तान का कदम सर्वथा खिसियानी बिल्ली के खम्भा नोचने जैसा था। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि शुरू से ही कांग्रेस और मुस्लिमलीग के राजनीतिक दृष्टिकोण में अन्तर था। मुस्लिम लीग दो-राष्ट्र के सिद्धान्त पर अमल के रूप में पाकिस्तान को देखती थी, पर कांग्रेस ने कभी द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया, अलबत्ता अंग्रेजों से आजादी प्राप्त करने के लिए दुर्जन-तोष-न्याय की दृष्टि से पाकिस्तान का निर्माण स्वीकार किया था। पाकिस्तान समझता था कि भारत से मित्रता का अर्थ होगा — द्विराष्ट्र सिद्धान्त की अवहेलना, अर्थात् जिस आधार पर पाकिस्तान बना है, वह आधार ही खण्डित हो जायेगा। पाकिस्तान को जिन्दा रहने के लिए और अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करने के लिए एक काल्पनिक या वास्तविक विवाद की सख्त जरूरत थी। कश्मीर के विवाद ने यह जरूरत पूरी कर दी।

पाकिस्तान ने ३० अक्तूबर, १९४७ को भारत को उत्तर देते हुए कहा कि भारत-विलय के बहाने से भारत ने कश्मीर में जो सेना भेजी है, उसी से स्थिति बिगड़ी है और भारत ने अपनी फौज भेजने की योजना पहले से ही तैयार कर रखी थी, इसी से विवाद उत्पन्न हुआ है।

परन्तु पाकिस्तान का यह आरोप सरासर गलत था, क्योंकि भारत के जल-थल-वायु सेना के तीनों सर्वोच्च ब्रिटिश अधिकारीयों ने अपने बयान में यह स्पष्ट कर दिया था कि कश्मीर में भारतीय सैनिकों को भेजने की कोई पूर्वयोजना नहीं थी। जब कबायलियों ने मुजफ्फराबाद पर कब्जा कर लिया तब भारतीय कमाण्डर-इन-चीफ को हमले की पहली सूचना मिली थी। उसी दिन कश्मीर-नरेश ने भारत से सहायता की याचना की थी और २५ अक्तूबर को कश्मीर के प्रधानमंत्री ने दिल्ली आकर भारत सरकार से सहायता की माँग दुहराई थी। तब लार्ड माउण्टबेटन ने ही इस बात पर जोर दिया था कि कश्मीर के भारत-विलय से पूर्व भारत को अपनी सेना वहाँ नहीं भेजनी चाहिए। विलय की औपचारिकता पूरी करने और आवश्यक दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने में दो दिन लग गये, तब विलय स्वीकार करते ही भारत ने अपनी सेना २७ अक्तूबर को भेजी। इसका अर्थ यह हुआ कि २५ अक्तूबर, अर्थात् कबायलियों द्वारा आक्रमण के तीन दिन बाद तक, भारत ने अपनी सेना भेजने की कोई योजना नहीं बनाई थी, न ऐसी किसी योजना पर विचार किया था।

भारत ने फिर भी कश्मीर के विवाद को सुलझाने का प्रयास किया। निश्चय हुआ कि २९ अक्तूबर को लाहौर में एक बैठक हो और उसमें इस प्रश्न पर विचार किया जाए। अकस्मात नेहरू अस्वस्थ हो गये, इसलिए वे लाहौर नहीं जा सके। तब ९ नवम्बर को गवर्नर-जनरल लार्ड माउन्टबेटन बैठक में शामिल होने के लिए लाहौर गए। पर उससे एक दिन पहले ही, इस बैठक को व्यर्थ करने के लिए पाकिस्तानी सरकार ने एक बयान जारी किया कि भारत ने छल-कपट से कश्मीर का विलय कर लिया है और अपनी सेना भेजकर कश्मीर पर आक्रमण किया है, पाकिस्तानी उसी का जवाब दे रहे हैं। बयान में यह भी कहा गया कि पाकिस्तान इस विलय

को मान्यता नहीं देता। यह बयान मैत्रीपूर्ण वातावरण बनाने में सहायक नहीं हो सकता था। फिर भी माउन्टबेटन लाहौर गये, जिन्ना से बातचीत हुई। बातचीत से स्पष्ट हो गया कि भारत और पाकिस्तान दोनों के दृष्टिकोण में जमीन आसमान का अन्तर है। पाकिस्तान का यही कहना था कि भारत ने छल-कपट से कश्मीर का भारत में विलय किया है और हिंसात्मक कार्यवाही से उसे पक्का कर लिया है। भारत की ओर से कहा गया कि हिंसात्मक कार्यवाही पहले पाकिस्तान ने की है, भारत ने नहीं। कश्मीर-नरेश ने स्वेच्छा से—भारत के बिना किसी दबाव के—विलय स्वीकार किया है, जिस तरह अन्य राजाओं ने स्वीकार किया है। इसलिए अब भारत का यह नैतिक और सांविधानिक दायित्व है कि वह कश्मीर की रक्षा करे, एवं भारत इसके लिए कटिबद्ध है।

तब जिन्ना ने यह प्रस्ताव रखा कि भारतीय सेना और पाकिस्तानी कबायली दोनों एक साथ कश्मीर खाली कर दें। जिन्ना से पूछा गया कि यह विश्वास वे कैसे दिला सकते हैं कि हमलावर कश्मीर से चले जाएंगे। तब जिन्ना ने तुरन्त माउण्टबेटन से कहा: "यदि आप भारतीय सेना हटा लेते हैं तो मैं हमलावरों को फौरन हटा लूंगा।" पाठक देखें कि जिन्ना के कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि कश्मीर पर हमला पाकिस्तान की साजिश से ही हुआ था। पर पाकिस्तान अपनी ज़बान से क्या कहता था— इसका प्रमाण उक्त बैठक के तीन दिन बाद ४ नवम्बर, ४७ को पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली खां का लाहौर में दिया गया यह वक्तव्य है—"कश्मीर में मुसलमानों के सफाये का षड्यंत्र किया गया है, कश्मीर की जनता उसी के ख़िलाफ लड़ रही है। कश्मीरियों के अनेक सगे-सम्बन्धी सीमाप्रान्त और कबायली क्षेत्रों में रहते हैं, उनमें उक्त षड्यंत्र से उत्तेजना फैल गई है और वे अपने कश्मीरी भाइयों की मदद के लिए मैदान में कूद पड़े हैं। कश्मीर का भारत-विलय कपट-पूर्ण है और पाकिस्तान की सुरक्षा के लिए खतरा है, इसलिए पाकिस्तान कश्मीरी मुसलमानों का समर्थन करता है।"



तस्करेभ्यो नियुक्तेभ्यः शत्रुभ्यो नृपवल्लभात्।
नृपतेर्निजलोभाच्च प्रजां रक्षेत् पितेव हि॥
यत्रायुद्धे ध्रुवं मृत्युर्युद्धे जीवितसंशयः।
तमेव कालं युद्धस्य प्रवदन्ति मनीषिणः॥

तस्करों से, गैरों के भड़काने पर हमला करने वालों से, शत्रुओं से, स्वयं अपने लोभ-लाभ के कार्यों से और अपने प्रिय जनों की ज्यादतियों से राजा पिता की तरह प्रजा की रक्षा करे।

जब युद्ध न करने पर विनाश और मृत्यु निश्चित हो और युद्ध करने पर जीवित रहना अनिश्चित हो, मनीषियों की दृष्टि में वही समय युद्ध करने का है।

सुरक्षापरिषद में शिकायत

कश्मीर के विवाद को सुलझाने के लिए भारत सरकार अपनी ओर से लगातार प्रयत्न करती रही, परन्तु पाकिस्तान भारत पर झूठे आरोप लगाने से बाज नहीं आया। वह बार बार यही दोहराता रहा कि भारत की कार्यवाही पूर्वनियोजित थी इसलिए संवैधानिक और नैतिक दृष्टि से वह उचित नहीं है। वह शेख अब्दुल्ला को भी पंचमांगी और देशद्रोही आदि कहते हुए लगातार कोसता रहा। वह बार बार यह भी दोहराता रहा कि क़श्मीर में मुसलमानों पर भयंकर अत्याचार हो रहे हैं इसलिए उन्हें रोकने और बाहरी

फौज को हटाने का कार्यक्रम तय करने तथा जब तक राज्य में जनमत संग्रह न हो तब तक वहां निष्पक्ष शासन स्थापित करने के लिये यह विवाद राष्ट्रसंघ को सौंप दिया जाये।

इसके जवाब में भारत की ओर से अपने तार में कहा गया—१. संयुक्त राष्ट्र संघ के पास अपनी कोई सेना नहीं है, इसलिए हमलावरों को भगाने के लिए वह भारतीय सैनिकों का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता, २. कश्मीर सरकार किसी का भी पक्षपात नहीं कर रही इसलिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा राज्य में कोई दूसरा प्रशासन स्थापित करने का प्रश्न नहीं उठता, ३. जब तक हमलावरों को राज्य से नहीं भगा दिया जाता तब तक हम कश्मीर के लोगों को असुरक्षित नहीं छोड़ सकते, न ही इस स्थिति में छोड़ सकते हैं कि हमलावर उन पर आक्रमण कर सकें। हमने उनको बचाने का वचन दिया है। यदि आप हमलावरों को नियंत्रित नहीं कर सकते, उन्हें आगे बढ़ने से नहीं रोक सकते और उन्हें राज्य से नहीं हटा सकते तो ऐसी स्थिति आ जायेगी जब कोई भी सरकार प्रशासन नहीं चला सकेगी और लूटमार करने वाले हालात पर हावी हो जायेंगे। इसे न हमारी सरकार बर्दाश्त कर सकती है और न ही आपकी सरकार।

पाकिस्तान को इस प्रकार का उत्तर देने के पश्चात् नेहरू ने भारतीय संसद में भी इसी प्रकार का वक्तव्य दिया और कहा कि कश्मीर की जनता को यदि लुटेरों की दया पर छोड़ दिया जाये तो यह कश्मीर के साथ विश्वासघात होगा। अन्त में उन्होंने कहा कि कश्मीर और भारत कई प्रकार से एक ही सूत्र में बंधे हैं और उस सूत्र को कोई तोड़ नहीं सकता।

सन् १९४७ के नवम्बर और दिसम्बर के बीच में भारत और पाकिस्तान के मध्य इसी प्रकार वाद-विवाद चलता रहा। परन्तु उसका कहीं अन्त दिखाई नहीं दिया। तब ३१ दिसम्बर १९४७ को भारत ने पाकिस्तान को सूचित किया कि उसने कश्मीर की स्थिति को सुधारने के लिए सुरक्षा परिषद से निवेदन करने का निश्चय कर लिया है। १ जनवरी १९४८ को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थित भारतीय प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद के प्रधान को भारत सरकार की लिखित शिकायत पेश कर दी। इस शिकायत में सुरक्षा परिषद

से कहा गया था कि वह पाकिस्तान को निर्देश दे— कि १. वह अपने सरकारी कर्मचारियों, सैनिकों और असैनिकों को जम्मू-कश्मीर राज्य पर आक्रमण करने या उसमें सहायता करने से रोके, २. अपने नागरिकों को लड़ाई में भाग लेने और हमलावरों को अपने प्रदेश में प्रवेश करने या उसका प्रयोग करने से रोके, ३. हमलावरों को पाकिस्तान सैनिक सामग्री या अन्य किसी प्रकार की ऐसी सहायता न दे जिससे वर्तमान संघर्ष जारी रहता हो।

भारत सरकार ने सुरक्षा परिषद से आग्रह किया कि वह जल्दी से जल्दी बैठक बुलाकर इस शिकायत के सम्बन्ध में अपना निर्णय करे। परन्तु पाकिस्तान टालमटोल करता रहा। पहले परिषद की बैठक ६ जनवरी को भारत की शिकायत पर विचार करने के लिए बुलाई गई, परन्तु पाकिस्तान ने कहा कि हम भारत की शिकायत का अभी ठीक तरह से अध्ययन नहीं कर सके हैं इसलिए हमारा प्रतिनिधि बैठक में भाग लेने के लिए १५ जनवरी से पहले न्यूयार्क नहीं पहुंच सकता। आखिर सुरक्षा परिषद की बैठक १५ जनवरी को तय हुई। उस बैठक में पाकिस्तान के विदेश मंत्री सर जफरुल्ला खां ने भारत के सब आरोपों को असत्य बतलाते हुए उल्टे भारत पर ही बड़े विचित्र विचित्र आरोप लगाये। पाकिस्तान के विदेश मन्त्री ने कहा कि पाकिस्तान कबायलियों की कोई सहायता नहीं कर रहा है, उनको कोई सैनिक सामग्री नहीं दे रहा और न ही उनको अपनी भूमि का इस्तेमाल करने दे रहा है। उन्होंने भारत पर यह आरोप लगाया कि भारत मुसलमानों को नेस्तानाबूद करने के लिए एक सुगठित योजना के अन्तर्गत काम कर रहा है। जूनागढ़ और मानवदार आदि रियासतों पर कब्जा करके भारत ने पाकिस्तान के खिलाफ आक्रमण किया है और षड्‌यंत्र करके कश्मीर राज्य को अपने में मिला लिया है। इसके अलावा विभाजन के समय जो समझौता हुआ था उसके अनुसार वह अपनी देनदारियां पूरी नहीं कर रहा है। सबसे बढ़कर जफरुल्ला ने यह आरोप लगाया कि भारत ने देश का विभाजन कभी हृदय से स्वीकार नहीं किया, केवल अंग्रेजों को भारत से हटाने के लिए उसने उसे स्वीकार किया था और अब वह उस विभाजन को भंग करने पर उतारू है।

सर जफरुल्ला कुशल राजनीतिज्ञ थे, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विधिवेत्ता थे, प्रखर वक्ता थे, उन्होंने ५ घंटे २५ मिनट तक अपना भाषण दिया और बैठक में उपस्थित सब सदस्यों को अपने भाषण से अभिभूत कर दिया। उन्होंने अपने भाषण के अन्त में कहा कि प्रश्न यह नहीं है कि कश्मीर पर आक्रमण हुआ, बल्कि यह है कि आक्रमण क्यों हुआ। मुख्य प्रश्न यह है कि कश्मीर के मुसलमानों को अपना राजनैतिक भविष्य चुनने का अधिकार होना चाहिए।

इसके जबाव में भारत के प्रतिनिधि गोपाल स्वामी आयंगर ने अत्यन्त शालीन और विनम्र भाषण दिया जिसका प्रभाव जफरुल्ला के जोशीले और उत्तेजक भाषण के सामने फीका रहा। श्री आयंगर की शालीनता में हमें मुख्य मनोवैज्ञानिक कारण यह प्रतीत होता है कि पाकिस्तान जिस तरह हिन्दुओं और भारत सरकार के विरुद्ध बेशर्मी के साथ मुसलमानों के कत्लेआम का आरोप लगा सकता था, वैसा आरोप पाकिस्तान पर लगाने को भारत तैयार नहीं था। पाकिस्तान मुसलमानों के अलग राष्ट्र होने के सिद्धान्त को मानने के कारण अस्तित्व में आया था इसलिए उसे हिन्दुओं के विरोध में झूठे और मनगढ़न्त आरोप लगाने में कोई हिचक नहीं थी, जबकि भारत द्विराष्ट्र सिद्धान्त को न मानने के कारण भारत में बचे करोड़ों मुसलमानों की कोमल भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचाना चाहता था, क्योंकि वह मुसलमानों को भी उसी तरह भारत का नागरिक मानता था जिस तरह हिन्दुओं को।

इसी मनोवृत्ति के कारण महात्मा गांधी ने और विनोबा भावे ने भारत से पाकिस्तान गये मेवात के तथा अन्य इलाकों के मुसलमानों को वापस भारत बुलाने में कोई संकोच नहीं किया था। यहां के मुसलमानों की सुरक्षा के लिए भारत सरकार ने अपनी ओर से कोई कदम बाकी नहीं छोड़ा था। पाकिस्तान के सामने ऐसी कोई विवशता नहीं थी, क्योंकि पाकिस्तान में हिन्दुओं का एकदम अभाव हो चुका था। करोड़ों हिन्दू शरणार्थी बनकर भारत में आ चुके थे और जो वहां बचे वे मुस्लिम नृशंसता के शिकार होकर नामशेष हो गये थे।

भारत की ओर से हमलावरों को पाकिस्तानी सहायता के जो प्रमाण पेश किये गये उनका सर जफरुल्ला द्वारा दिया गया उत्तर इतना हास्यास्पद है कि इस पर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति विश्वास करने को तैयार नहीं होगा। उन उत्तरों को हम दोहराना नहीं चाहते परन्तु एक़-दो उत्तरों की बानगी दिखाना उचित होगा।

भारत द्वारा पकड़ी गई गाड़ियों पर पाकिस्तानी नम्बर प्लेट होने की शिकायत पर जफरुल्ला ने कहा कि ये गाड़ियाँ पहले से कश्मीर में होंगी और संघर्ष छिड़ जाने के बाद वापस नहीं आ सकी होंगी। परन्तु जफरुल्ला साहब यह बताना भूल गए कि यदि वे गाड़ियां अपने नियमित काम से कश्मीर आई थीं तो पाकिस्तान ने उनके पकड़े जाने पर आपत्ति क्यों नहीं की। हमलावरों की गाड़ियों को पाकिस्तान से पेट्रोल मिलने की शिकायत पर उन्होंने कहा कि पाकिस्तान सरकार का अपना कोई पैट्रोल पम्प नहीं है। पेट्रोल वितरित करने वाली निजी कम्पनियां हैं। यदि वे बिना कूपन के नाजायज तौर पर पैट्रोल वितरित कर रही हैं तो पाकिस्तान सरकार इसमें क्या कर सकती है। परन्तु वे यह बताना भूल गये कि पेट्रोल खरीदने के लिए जिस विदेशी मुद्रा के विनिमय की आवश्यकता होती है उसकी व्यवस्था ये निजी कम्पनियां पाकिस्तानी सरकार की जानकारी के बिना कैसे कर सकती थीं। हमलावरों को अस्त्र-शस्त्र देने के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि कबायली तो अपने आप हथियार बनाते हैं और महायुद्ध के बाद सैनिक सामग्री और गोला-बारूद सर्वत्र फालतू बिखरा पड़ा था, वहां से कबायली भी ले सकते थे। परन्तु जफरुल्ला के पास इस बात का कोई जबाव नहीं था कि संसार के किसी दूरस्थ कोने से इतनी बड़ी मात्रा में सैनिक सामग्री कैसे प्राप्त हो गई जिससे पूरी फौज लैस हो जाए और पाकिस्तान की सरकार को उसकी जानकारी भी न हो।



भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां
मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये।
नयन्ति तेष्वप्युपपन्न नैपुणाः
गभीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम् ॥

विद्वानों के सामने सभा-चतुर वे माने जाते हैं जो अपने मन की बात अपनी वाणी से प्रकट कर देते हैं। परन्तु उन वक्ताओं में भी कुशल माने जाने वाले ऐसे कुछ ही लोग होते हैं जो किसी गम्भीर अर्थ को प्रकट कर सकते हों।

शिकायत के बाद

भारत की सुरक्षा परिषद् से शिकायत पर सर जफरुल्ला खाँ ने वकीलों की सी चतुराई अपनाते हुए जोशीला और अनर्गल आरोपों से भरा जो भाषण दिया उसमें उन्होंने सारे सन्दर्भ को ही बदलने की कोशिश की। भारत ने अपनी शिकायत के साथ कबायलियों को पाकिस्तानी सहायता के जो तथ्यपूर्ण प्रमाण दिए उनके उत्तर में पाक विदेशमंत्री ने जो हास्यास्पद तर्क दिए उनकी चर्चा हम कर रहे थे। अन्य प्रमाणों के साथ भारत का कहना था कि जो हमलावर कबायली भारतीय सैनिकों के हाथों पकड़े

गए हैं वे सैनिकों की पोशाक (यूनिफार्म) में थे। उनके पास यह सैनिक वर्दी कहां से आ गई? पाठक देखें कि एक काइयां वकील इसका क्या उत्तर देता है ?

अपने श्रोताओं के सिर प्रशंसा में हिला देने वाले 'सर' जफरुल्ला ने कहा कि कबायलियों के पास सैनिकों की वर्दी होने से कुछ सिद्ध नहीं होता, क्योंकि लाममुक्ति होने पर सैनिकों को अपनी वर्दी और बैज रखने की अनुमति मिल गई थी। फिर इसके अलावा महायुद्ध की समाप्ति पर स्वयं भारत सरकार के डिस्पोजल विभाग द्वारा ही ये वर्दियां बेची गई थीं। कबायलियों ने वर्दियां जायज या नाजायज तरीके से प्राप्त कर ली होंगी। इस तर्क पर दुर्योधन के दरबार में बैठे कौरवों की तरह संयुक्तराष्ट्रीय प्रतिनिधियों ने अवश्य सिर हिलाए होंगे, पर खां साहब यह बताना भूल गए कि कबायली कब कौन सी सेना में भर्ती हुए थे? जब वे किसी नियमित सेना में भर्ती ही नहीं हुए, तो उनकी लाममुक्ति का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

भारत का आरोप था कि पाकिस्तान के सैन्य अधिकारी कबायलियों को प्रशिक्षण दे रहे हैं। इस पर 'सर' का कहना था कि कबायलियों को सैन्य प्रशिक्षण की कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि वे तो जन्म से ही लड़ना जानते हैं। सर साहब को यह कौन बताए कि यों लड़ना और लूटमार करना अलग बात है और सैनिक ढंग से सामरिक व्यूह बनाकर लड़ना अलग बात है। फिर जरा से आपसी झगड़े पर कत्ल कर देने या लूटमार करने वालों के पास सेना के निशान वाली सुरंगें, टैंकमारक बन्दूकें, ३·७ हैवित्जर तोपें तथा अन्य भारी हथियार कहां से आ गए?

पाकिस्तान हमलावरों को भड़का रहा है और अन्य सब तरह की सहायता दे रहा है, इस आरोप के उत्तर में खां साहब का कहना था कि कश्मीर-नरेश अपनी रियासत के तीस लाख मुसलमानों को खत्म कर देना चाहते थे ताकि कश्मीर का भारत में विलय आसान हो जाए। पर यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी बहुसंख्यक मुस्लिम प्रजा के एक भी आदमी को बिना मारे यदि १५ अगस्त से पहले वे भारत में मिलना चाहते, तो उन्हें रोकने वाला कोई नहीं था, वह उनका अधिकार था।

पाकिस्तान का कहना था कि कबायलियों के हमले से पाकिस्तान का कोई वास्ता नहीं, तो फिर वह उन सशस्त्र हमलावरों को कश्मीर आने से क्यों नहीं रोकता? इसके उत्तर में सर जफरुल्ला का कहना था कि पाकिस्तान कश्मीर के स्वतंत्रता-संघर्ष का गला नहीं घोटंना चाहता। गला न घोटना अलग बात है, पर यदि पाकिस्तान का हमलावरों से कोई वास्ता नहीं था तो जफरुल्ला खाँ उनकी और अवैध रूप से स्थापित तथाकथित आज़ाद कश्मीर की वकालत किस हैसियंत से कर रहे थे।

भारत के प्रतिनिधि श्री गोपाल स्वामी आयंगर जफरुल्ला के मिथ्या भाषण से स्तब्ध रह गए। उन्होंने जफरुल्ला का तुर्की-ब-तुर्की जवाब देने के बजाय अपनी शालीनता नहीं छोड़ी और सुरक्षा परिषद् से यही आग्रह करते रहे कि पाकिस्तान द्वारा हमलावरों को दी जाने वाली सहायता तुरन्त बन्द होनी चाहिए। पर सुरक्षा परिषद् ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। तब एम॰ सी॰ सीतलवाड़ ने जफरुल्ला के भाषण का विस्तार से जबाब दिया और कहा कि जफरुल्ला ने भारत के विरुद्ध जितना विष-वमन किया है और मिथ्या आरोप लगाए हैं, वे केवल इसलिए कि असली मुद्दे से सबका ध्यान हटा दिया जाए, क्योंकि भारत की सही शिकायत का उनके पास कोई जबाब नहीं है।

हम पहले कह चुके हैं कि जिस बेशर्मी से पाकिस्तान के प्रतिनिधि भारत पर मुसलमानों के कत्लेआम का आरोप लगा रहे थे, वह बेशंर्मी भारत नहीं बरत सकता था, क्योंकि उसे भारत में बसे करोड़ों मुसलमानों की भावनाओं का भी ध्यान रखना था और द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त को न मानने के कारण वह मुसंलमानों को भी हिन्दुओं के समान ही भारत का नागरिक मानता था। फिर भी श्री सीतलवाड़ ने जफरुल्ला के मुसलमानों के कत्लेआम वाले आरोप का यह तथ्यपूर्ण उत्तर दिया कि यदि भारत में कुछ मुसलमान मारे भी गए हैं तो उसका कारण मुस्लिम लीगी नेताओं द्वारा जनता को पढ़ाया गया हिंसा और घृणा का वह पाठ है जो वे वर्षों से पढ़ाते आ रहे हैं। परन्तु कश्मीर के सन्दर्भ में इसकी चर्चा सर्वथा अप्रासंगिक है। इस समय सुरक्षा परिषद् के सामने केवल एक ही प्रश्न है और वह यह कि कश्मीर में हमलावरों की सैनिक कार्यवाही कैसे बन्द हो।

उन्होंने यह भी कहा कि अगस्त १९४७ में ही मुस्लिम लीग की ओर से कश्मीर के मुसलमानों को भड़काने के लिए मजहबी नेता कश्मीर भेजे गए, पश्चिमी पंजाब की ओर से जम्मू, पुंछ और राजौरी में हमले किए गए, वहां के मुसलमानों को विद्रोह के लिए भड़काया गया, कश्मीर की आर्थिक नाकेबन्दी की गई, उस पर राजनीतिक दबाव डाला गया। जब इन सबसे उसे सफलता नहीं मिली, तो उसने बड़े पैमाने पर सैनिक आक्रमण कर दिया। ये सब काम पाकिस्तान ने लगभग एक साथ ही किए। उसी के फलस्वरूप कश्मीर का भारत में विलय हुआ। इस विलय के पीछे भारत की न कोई साजिश थी, न षड्यंत्र, न ही कोई पूर्व-कल्पित योजना। विलय होते ही भारत ने कश्मीर की सहायता के लिए सेना की टुकड़ी भेजी, पर वहां पाकिस्तानी सेना पहले से मौजूद थी। पाकिस्तानी सेना की उपस्थिति से कैसी विषम स्थिति पैदा होगी और संघर्ष का क्षेत्र कितना बढ़ जाएगा, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसलिए भारत ने सुरक्षा परिषद् से स्थिति को सुधारने की अपील की है।

अगले दिन जफरुल्ला ने सीतलवाड़ की दलीलों का जवाब दिया, अपने वही पुराने आरोप दुहराये और साथ में यह सुझाव दिया कि संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में कश्मीर में जनमत लिया जाए कि कश्मीर भारत में विलय चाहता है या पाकिस्तान में। जब तक सुरक्षा परिषद् से ऐसा आश्वासन नहीं मिल जाता, तब तक कश्मीर में लड़ाई बन्द नहीं होगी। पाठक देखें कि 'लड़ाई बन्द नहीं होगी' यह बात उस पाकिस्तान का प्रतिनिधि कह रहा है जो पाकिस्तान बारम्बार यह दावा कर रहा है कि उसका कबायलियों के हमले से कोई वास्ता नहीं है।

जफरुल्ला के उस भाषण का उत्तर दिया शेख अब्दुल्ला ने जो उस बार भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य बन कर गए थे। शेख अब्दुल्ला ने सुरक्षापरिषद् से बड़े व्यथा-पूर्ण शब्दों में कहा, कि मेरी समझ में नहीं आता कि मैं सदस्यों को कैसे समझाऊं और कैसे विश्वास दिलाऊँ कि पाकिस्तान हमलावरों की सक्रिय सहायता कर रहा है। गनीमत यही है कि जफरुल्ला साहब यह तो स्वीकार कर रहे हैं कि कबायलियों की कार्यवाही जारी है।

पाकिस्तान के सहयोग और सहायता के बिना कबायली कश्मीर में प्रवेश कर ही नहीं सकते थे, क्योंकि जम्मू या कश्मीर पहुंचने के लिए उन्हें पाकिस्तानी प्रदेश से गुजरना होता है। इसके बाद उन्होंने कश्मीर विवाद के पैदा होने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया कि पाकिस्तान को हमारी आजादी में कोई दिलचस्पी नहीं, वह तो हमें अपनी गुलामी की जंजीर में बांधना चाहता है। उसने कश्मीर शासक के विरुद्ध हमारे स्वातंत्र्य आन्दोलन तक का विरोध किया था। जब कश्मीरी उस आन्दोलन में जेलों में बन्द थे तब पाकिस्तानी नेता और अखबार हम पर गालियों और गोलियों की बौछार कर रहे थे।

इसके बाद शेख अब्दुल्ला ने पाकिस्तानी अधिकारियों और अखबारों के उद्धरणों से ही कबायलियों को सहायता देने के गिनकर १६ प्रमाण दिए जिनके विस्तार में यहां जाने की आवश्यकता नहीं है।



कितवा यं प्रशंसन्ति यं प्रशंसन्ति चारणाः ।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यः स पार्थ पुरुषाधमः ।
राजानो यं प्रशंसन्ति यं प्रशंसन्ति वै द्विजाः ।
साधवो यं प्रशंसन्ति स पार्थ पुरुषोत्तमः ॥

हे पार्थ! जिसकी प्रशंसा धूर्त लोग करते हों, जिसकी प्रशंसा खुशामदी लोग करते हों और कुलटा स्त्रियां जिसकी प्रशंसा करती हों, वह पुरुषों में नीच है। जिसकी प्रशंसा अन्य राष्ट्राध्यक्ष करते हों, बुद्धिमान करते हों, सज्जन लोग करते हों, वह पुरुषों में उत्तम है।

भारत का मोहभंग

भारत ने कश्मीर पर पाकिस्तानी हमलावरों के हमले की शिकायत एक जनवरी १९४८ को की थी। तब से वह शिकायत आज तक वहां कायम है और उसका उचित ढंग से निपटारा नहीं हो सका है। जिस तरह हमारे देश की अदालतों में दीवानी मुकद्दमे सालों तक लटके रहते हैं और उनकी सुनवाई की तारीखें लम्बी लम्बी पड़ती रहती हैं, मामला लटकता रहता है, ठीक वही हालत इस अन्तर्राष्ट्रीय अदालत की भी है।

अदालत या कचहरी की एक विशेषता है। यदि 'कचहरी' शब्द को संस्कृत का मान लिया जाए, तो वह विशेषता बड़ी सुगमता से स्पष्ट हो जाती है। "कचहरी" शब्द का संस्कृत के अनुसार अर्थ होगा-"कचान् हरति इति कचहरी"— अर्थात् सिर के बालों को साफ करके आदमी को रुण्ड-मुण्ड बना देने वाली। दीवानी अदालतों में वादी और प्रतिवादी दोनों लड़ते-लड़ते कंगाली की हालत तक पहुंच जाते हैं, पर वकीलों की करामात है कि फैसला होने में नहीं आता। "वकील" शब्द की विशेषता भी उसको संस्कृत-जन्य शब्द मानकर स्वयं स्पष्ट हो जाती है। संस्कृत के अनुसार "वकील" शब्द का अर्थ होगा-"वाचा कीलयति इति वाक्कीलः, वाक्कीलः एव "वकीलः" अर्थात् जो अपनी वाणी से दूसरे की बोलती बन्द कर दे, वह वकील। वकालत का व्यवसाय कदाचित ही किसी मामले के सत्य और असत्य का निर्णय करने के लिए होता हो, बल्कि मामले को और उलझाने के लिये और दूसरे की जबान बन्द करने के लिए ही होता है।

सन् १९४८ से लेकर गत ४२ वर्षों में सुरक्षा परिषद् की अब तक ५०० से भी अधिक बैठकें हो चुकी होंगी। पर अब तक उसकी ओर से गुत्थी सुलझाने का कोई कारगर उपाय नहीं हो सका। भारत सरकार सुरक्षा परिषद् से जितनी जल्दी निर्णय की आशा करती थी, वहां उतनी ही देर होती चली गई। इसमें एक प्रमुख कारण यह भी था कि सुरक्षा परिषद् के सदस्य क्रमशः बदलते रहते हैं और जो देश उसके सदस्य बनते हैं वे सत्य और असत्य का निर्णय करने के बजाय अपनी स्वार्थ-परक शक्ति-राजनीति (पावर पालिटिक्स) की चालें चलने लगते हैं। जब भारत ने शिकायत की थी, उस समय सुरक्षा परिषद् के निम्न सदस्य थे— संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन, चीन, फ्रांस, रूस, यूक्रेन, कोलम्बिया, अर्जेण्टाईना, बेल्जियम और कनाडा। इस सूची को देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि शक्ति-राजनीति के खेल में बहुमत किस ओर होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण भी इसी शक्ति-राजनीति को चरितार्थ करने के लिऐ एक विश्वमंच के रूप में हुआ था और तब से वह खेल बदस्तूर जारी है।

इतने वर्षों में सुरक्षा परिषद् के जो देश सदस्य बनते रहे उनके वक्तव्यों से एक निष्कर्ष सामने आता है और वह यह कि शुरू शुरू में चीन ने भारतीय पक्ष का समर्थन किया, ब्रिटेन ने भी, परन्तु अमरीका, फ्रांस, कनाडा, अर्जेण्टाईना और कोलम्बिया ने हमेशा पाकिस्तान का पक्ष लिया। इन सबमें केवल मात्र रूस (और सदस्य बनने पर यूक्रेन भी) ऐसा देश है जिसने सदा भारतीय पक्ष का समर्थन किया। कभी कभी तो यहां तक नौबत आई कि सुरक्षा परिषद् के अन्य सब सदस्य एक तरफ और अकेला रूस एक तरफ। रूस ने अपने निषेधाधिकार (वीटो) का प्रयोग करके बहुमत के प्रस्ताव को निरस्त कर दिया। कदाचित् रूस के इस व्यवहार से, विश्व-राजनीति में जिसे आँग्ल-अमरीका या कम्युनिस्ट-विरोधी गुट कहा जाता है, उसे ऐक्यबद्ध होने तथा और अधिक मुखर होने में सहायता मिली हो।

सुरक्षा परिषद् की बैठकें चलती रहीं। तरह तरह के प्रस्तावों पर बहस होती रही। अन्त में एक आयोग बनाने का फैसला हुआ। फिर उस आयोग के कार्य क्षेत्र के बारे में विवाद चलता रहा। प्रस्ताव के किसी अंश को भारत मानने को तैयार नहीं, किसी अंश को पाकिस्तान। कारण यह है कि दोनों की मान्यताओं में जमीन आसमान का अन्तर था। पाकिस्तान की मान्यताओं को आंग्ल-अमरीकी गुट का प्रच्छन्न समर्थन प्राप्त था। इसलिए वे अपने आपको निष्पक्ष दिखाते हुए भी अन्त में पाकिस्तान का ही पक्ष लेते थे। आखिर पाकिस्तान के सिरजनहार तो वही थे न। जिस देश को छोड़कर जायें, उसे विभाजित करके जायें, ताकि उस समूचे देश पर नहीं तो कम से कम उस विभाजित हिस्से पर तो उनका नियंत्रण बना रहे। यही आंग्ल-अमरीकी गुट की विश्व-राजनीति का प्रमुख आधार है। इसके मूल में है कम्युनिज्म की विचारधारा के प्रसार को रोकना—दूसरे शब्दों में सोवियत संघ के साम्राज्यवाद के प्रसार को रोकना।

जब तीन जून १९४७ को वह योजना प्रकाशित हो गई जिसमें पाकिस्तान बनने की बात थी और जिस "जून प्लान" को क्रियान्वित करने के लिए ब्रिटिश सरकार की ओर से माउण्टबेटन को भारत भेजा गया था, उस योजना के अन्तर्गत आजादी प्राप्त होने से कुछ ही दिन पहले अंग्रेज

अधिकारियों ने अपने मुसलमान कर्मचारियों को साथ लेकर, गिलगित एजेन्सी के साथ जिस भूखण्ड पर अपने दांत गड़ाये थे, वही भूखण्ड बाद में "पाकिस्तान" के नाम से दुनियां में घोषित हुआ। कश्मीर पर जो हमला हुआ उसकी भूमिका ३० जुलाई, १९४७ से ही प्रारम्भ हो गई थी। इस घटना से कश्मीर-नरेश को और भारत की जनता को जानबूझकर अनजान रखा गया।

अंग्रेजों ने जितने "सार्वभौम" अधिकार कश्मीर नरेश को दे रखे थे, उतने भारत के अन्य किसी नरेश को नहीं— हैदराबाद के निजाम को भी नहीं। उसका कारण यही था कि कश्मीर के उत्तरी भाग को अंग्रेज सदा अपने अधिकार में रखना चाहते थे। कहने को ये इलाके कश्मीर के अन्तर्गत थे, पर कश्मीर-नरेश का इन पर कोई नियंत्रण नहीं था। देश की शेष जनता इस प्रदेश के बारे में नहीं जानती थी।

अंग्रेजों ने अपनी ओर से यह पूरा प्रयत्न किया कि भारत की सीमा कहीं भी रूस से न मिलने पाए। ज़ार के समय से ही अंग्रेजों के मन में रूस के साम्राज्य का हव्वा बैठा हुआ था। अफगानिस्तान से पामीर होकर एक १५ मील का रास्ता था जिससे भारत और रूस के मध्य पुराने युग में आवागमन होता था। अंग्रेजों ने यह रास्ता भी काट दिया। पाकिस्तान ने अंग्रेजों की साजिश से कश्मीर का जो हिस्सा लिया है वह और चीन द्वारा अधिकृत सिंकियांग ये दोनों ही पामीर में जाकर मिलते हैं। इस ओर और उस ओर रंग, संस्कृति, भोजन, सामाजिक जीवन, भाषा और वर्णमाला, प्रथा और परिपाटी दोनों की एक ही है। वह एक अलग ही दुनिया है जिससे किसी कश्मीर-नरेश का कोई परिचय नहीं रहा। भारत की असली उत्तरी सीमा हिन्दुकुश और पामीर हैं, यह बात कितने भारतवासी जानते हैं? प्राचीन भारतीय साहित्य में जिसे सुमेरु या लोकालोक पर्वत कहा गया, अनेक प्राच्यविद्या-विशारदों के अनुसार वह पामीर ही है। हिन्दुकुश भी मूलतः 'सिन्धुकोह" है, अर्थात् ऐसा पर्वत जिसका सम्बन्ध सिन्धु नदी वाले प्रदेश से है। यही बात स्वात, चित्राल और काफिरिस्तान के साथ भी है जो इस समय अंग्रेजों की कृपा से पाकिस्तान के अंग हैं और जो किसी समय

कश्मीर के अंग थे, परन्तु कश्मीर-नरेश ने या भारत सरकार ने उन प्रदेशों को कभी अपना समझकर उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। इतना ही क्यों, मध्य एशिया में गिने जाने वाले, लद्दाख के निकटवर्ती हुंजा, दरद, द्रास, गिलगित, खोतान, सिंकियांग आदि सब भारतीय अंचल हैं। वहां बहुतेरी भारतीय सम्पत्ति है। वे सभी कभी बौद्ध थे, पर कश्मीर में इस्लाम का वर्चस्व बढ़ने पर वे भारत से कट गए। तिब्बत के अन्दर भी अनेक भारतीय स्थान हैं। पर भारत ने उन स्थानों पर कभी दावा नहीं किया।

आखिर अभी तक अमरीका, पाकिस्तान की आर्थिक या शस्त्रास्त्र की सहायता क्यों करता रहा है, इसलिए न कि रूसी पंजा कहीं विशाल भारत महादेश को अपनी मुट्ठी में न समेट ले। अयूब खां और जनरल जिया कम्युनिज्म का हव्वा दिखाकर ही अमरीका से जन-धन-शस्त्रास्त्र-बल बटोरते रहे हैं। जब अफगानिस्तान में रूसी सेना आ धमकी तब जनरल जिया अफगानिस्तान को मुक्त कराने के लिऐ मुजाहिदीन की सहायता के नाम पर सभी तरह के आधुनिक घातक हथियार प्राप्त करते रहे। अफगानिस्तान से रूसी सेना हट गई तो उन्हीं हथियारों और मुजाहिदीन का मुँह कश्मीर की ओर मोड़ दिया गया जो कश्मीर के वर्तमान आतंकवाद का आधार है।

अन्त में भारत सरकार का भी मोह भंग हो गया। भारत ने समझ लिया कि सुरक्षा परिषद् से उसे न्याय नहीं मिलेगा। यहां वही शेर चस्पां होता हैं—

हमने तो सोचा था अफसर से करेंगे शिकायत जाकर।
मगर वह कम्बख्त भी उसका चाहने वाला निकला॥



यदि न स्यान्नरपति सम्यङ् नेता ततः प्रजा।
अकर्णधारा जलधौ विप्लवेतेह नौरिव॥

यदि राजा अच्छा नेतृत्व करने वाला न हो तो प्रजा वैसे ही डावांडोल होकर भटकती रहती है जैसे बिना मल्लाह के समुद्र में नाव।

सरकार की गलतियां

सबसे पहला प्रश्न यही है कि भारत सरकार ने सुरक्षा परिषद से शिकायत क्यों की ? क्या उसकी सेना पाकिस्तानी दस्युओं को खदेड़ने में समर्थ नहीं थी?

यह कारण नहीं है। जब भारत ने देखा कि दस्युओं के रूप में स्वयं पाकिस्तानी सेना के सैनिक ही हमलावरों में शामिल हैं, तो उसने यही उचित समझा कि सुरक्षा परिषद के सामने उन प्रमाणों को पेश किया जाए जिनसे पाकिस्तान सरकार का हमले में सक्रिय रूप से शामिल होना सिद्ध होता है। शिकायत का असली उद्देश्य था पाकिस्तान के साथ लड़ाई को रोकना।

पर पाकिस्तान यही कहता रहा कि उसका हमलावरों से कोई वास्ता नहीं। यह ठीक वही स्थिति है जैसी कि अब सन् १९९० में पाकिस्तान द्वारा आतंकवादियों को सैन्य प्रशिक्षण देने के शिविरों का पूरा विवरण भारत ने पाकिस्तान को भी भेजा और अमरीका को भी, पर दोनों ने इस प्रकार के शिविरों के अस्तित्व से इंकार किया। पाकिस्तान ने झूठ बोलने की कसम खा रखी है, तो सैंया कोतवाल ने उसकी हां में हां मिलाने की।

पर सत्य सौ पर्दे फाड़ कर भी बाहर निकल आता है। जब सुरक्षा परिषद ने एक आयोग भेजने का निश्चय किया तो वह पहले पाकिस्तान गया। तब पाकिस्तान के विदेश मंत्री जफरुल्ला खां ने पहली बार आयोग के सामने स्वीकार किया कि पाकिस्तान की नियमित सेना के तीन ब्रिगेड कश्मीर में मौजूद हैं। अपनी फौज भेजने का बहाना यह बताया कि भारतीय सेना के पाकिस्तान पर संभावित आक्रमण को रोकने के लिए, शरणार्थियों की बाढ़ को रोकने के लिए और नहरी पानी की रक्षा के लिए यह सेना भेजी गई है। पर इन बहानों से किसी भी देश का अन्य देश में अपनी सेना भेजना अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से सर्वथा गैरकानूनी है।

कश्मीर के मामले में नेहरू जी पूरे मंत्रिमंडल में विचार-विमर्श किए बिना, केवल माउन्टबेटन की सलाह पर चलते थे। कायदे से कश्मीर का मामला गृहमंत्री होने के नाते सरदार पटेल के नियंत्रण में होना चाहिए था। आखिर अन्य रियासतों का निपटारा पटेल ने किया ही था। पर नेहरू स्वयं को कश्मीर का वाली-वारिस समझते थे। 'पंडित' माउन्टबेटन का या लेडी माउन्टबेटन का नेहरू जी पर कितना असर था, अब यह बात जगजाहिर हो चुकी है। इसलिए उस विषय में कुछ न कहना ही ठीक है।

पर हमें सुरक्षा परिषद में शिकायत करने का एक अन्य वैध कारण भी पता लगा है, जिससे स्पष्ट होता है कि विवश होकर भारत को शिकायत करनी पड़ी। यह कारण क्या था?

उस समय सारे भारत में पेट्रोल केवल एक ही स्थान पर निकलता था और वह स्थान था— असम में 'डिगबॉय'। पेट्रोल निकालने का यह काम एक ब्रिटिश कम्पनी करती थी। पेट्रोल के वितरण का एकाधिकार भी एक

ब्रिटिश कम्पनी के ही पास था। अपने आकाओं के इशारे पर इन दोनों कम्पनियों ने भारत को पेट्रोल देना बन्द कर दिया। बिना पेट्रोल के सेना एकदम लंगड़ी। उसके बिना न वायुयान चल सकते हैं, न ट्रक, न टैंक, न बख्तरबन्द गाड़ियां, न जीप या मोटर गाड़ियां। आजादी के बाद भारत ने इसीलिए अरबों रु० भूगर्भ में तेल खोजने और तेल निकालने पर व्यय किये हैं।

जब तेल मिलना बन्द हो गया, तो सुरक्षा परिषद के समक्ष शिकायत करने के सिवाय और कोई चारा नहीं बचा।

बहरहाल देश की सारी जनता सुरक्षा परिषद में शिकायत को नेहरू जी की भारी भूल मानती है। बाद में स्वयं श्रीमती इन्दरा गांधी ने न्यूयार्क में कहा था कि सुरक्षा परिषद में शिकायत करके और युद्धविराम स्वीकार करके भारत ने गलती की थी, भारतीय सेना को आगे बढ़ने देते तो समस्या स्वयं सुलझ जाती।

परन्तु उससे भी बढ़कर एक और गलती थी जिसके कारण कश्मीर की गुत्थी उलझ गई। महाराजा हरिसिंह ने जिस विलयपत्र पर हस्ताक्षर किए थे, उसमें जनमत की कहीं कोई शर्त नहीं थी। सन् १९३५ के गवर्नमेंन्ट आफ इंडिया के जिस ऐक्ट के मुताबिक देशी राज्यों को भारत या पाकिस्तान डोमिनियन में शामिल होने का अधिकार दिया गया था, उसमें भी ऐसा कोई प्रावधान नहीं था। इस विलय-पत्र की स्वीकृति के जिस पत्र पर गवर्नर जनरल की हैसियत से माउंटबेटन ने हस्ताक्षर किये थे, उसमें भी इस प्रकार का कोई संकेत नहीं था। पर हां, उस विलय की स्वीकृति वाले पत्र के साथ, उसी तारीख को, माउंटबेटन ने महाराजा हरिसिंह को एक अलग पत्र लिखा था, जिसमें कहा गया था, "मेरी सरकार की यह इच्छा है कि जैसे ही कश्मीर में विधि और व्यवस्था फिर से स्थापित हो जाए और आक्रमणकारी राज्य से भगा दिए जाएं, राज्य में अधिमिलन का प्रश्न जनमत द्वारा तय किया जाना चाहिए।"

यह सर्वथा अनावश्यक था। इस पत्र ने विलय को अस्थायी बना दिया। यही पत्र भारत के गले की फांसी बन गया। ऐसा किसी और देशी राज्य

के साथ नहीं किया गया, फिर कश्मीर के साथ ही क्यों? यह अंग्रेजों की कूटनीति का परिणाम था, या जरूरत से ज्यादा अपनी नेकनीयती जाहिर करने का नतीजा था— कहा नहीं जा सकता। "अति सर्वत्र वर्जयेत्" की उक्ति यदि कहीं चरितार्थ होती है, तो इसी जगह। यदि कश्मीर की समस्या सरदार पटेल के हाथ में होती, तो वे यह गलती कभी न होने देते।

सन् १९५३ में कश्मीर की संविधान सभा बन गई और उसने सर्व-सम्मति से कश्मीर के भारत-विलय का समर्थन कर दिया, तो लोकतांत्रिक प्रक्रिया की दृष्टि से जनमत वाली बात भी पूरी हो गई। पर पाकिस्तान की सरकार और सुरक्षा परिषद आज तक उसी मरे हुए सांप की लकीर पीटने से बाज नहीं आते। यह भारत की सदाशयता और पाकिस्तान की दुराशयता दोनों की अति का अच्छा नमूना है।

भारत की शिकायत के ठीक एक वर्ष बाद, सुरक्षा परिषद ने दोनों देशों से युद्ध-विराम की सिफारिश की और भारत ने एक जनवरी १९४८ को मध्यरात्रि के एक मिनट पूर्व युद्धविराम का आदेश जारी कर दिया। यह भारत ने एक और बड़ी गलती कर दी। यह उसकी आत्मघाती भलमनसाहत का दूसरा नमूना है।

उस समय भारत और पाकिस्तान दोनों के अंग्रेज सेनापति लड़ाई बन्द करना चाहते थे, क्योंकि यदि पाकिस्तान लड़ाई बन्द करना न मानता तो भारतीय सेना सीधी पाकिस्तान प्रदेश में घुस जाती। उधर पाकिस्तानी सेना कारगिल, स्कर्दू, बालतिस्तान पर कब्जा कर चुकी थी और अब भारतीय सेना वहां पहुंच कर प्रत्याक्रमण के लिए सन्नद्ध थी। पाकिस्तान के पास कश्मीर का एक तिहाई हिस्सा आ चुका था और भारतीय सेना पुंछ के पाकिस्तानी घेरे को तोड़ कर तथाकथित आजाद कश्मीर पर हमला बोलने वाली थी। ज्योंही भारतीय सेना अपने खून-पसीने से बोई गई फसल काटने को तैयार हुई, त्योंही युद्धविराम हो गया। इससे पाकिस्तान को जितना लाभ हुआ, भारत को उतनी ही हानि।

पाकिस्तान की आन्तरिक स्थिति उस समय इतनी खराब थी कि भारतीय सेना के किसी भी जबर्दस्त धक्के को वह सह नहीं सकता था। जिन्ना की मृत्यु हो चुकी थी। उनकी जगह लेने वाला कोई नहीं था।

इधर भारत में नया संविधान तैयार हो चुका था। शरणार्थियों का पुनर्वास हो चुका था। महात्मा गांधी की हत्या के बाद साम्प्रदायिकता की ज्वाला भी ठण्डी पड़ चुकी थी। भारत धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित हो चुका था। इस तरह भारत अन्दर और बाहर दोनों जगह बहुत सुदृढ़ स्थिति में था। यह भारत की कैसी राजनीति है जो हमेशा अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारती है? क्या भारत के सिवाय संसार में कोई और देश भी कभी ऐसी गलती करेगा?

पर हमने तो गलतियों पर गलतियां करने का ठेका ले रखा है। देखते देखते एक और गलती कर डाली। वह गलती थी कश्मीर के लिए संविधान में ३७० अनुच्छेद की व्यवस्था। इस अनुच्छेद के रहते न तो भारतीय जनता कभी कश्मीर के साथ अपनी पूर्ण एकात्मता अनुभव कर सकती है, न ही कश्मीर की जनता भारत के साथ।



आया था साम्राज्यलोभी पठानों का दल
आये थे मुगल विजय रथ के पहियों से
बनाते हुए धूल का जाल, उड़ाते हुए विजय पताका
देखता हूं सूने पथ की ओर, आज उनका नहीं है निशान।
और उस शून्य छाया में आये हैं दल के दल
लौहपथ से, प्रवर प्रबल अंग्रेज, विकीर्ण करते अपना तेज
जानता हूं, उनकी राह से भी गुजर जायेगा काल,
कहीं बहा ले जायेगा साम्राज्य को देश घिरा जाल॥

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुच्छेद ३७०

भारतीय संविधान के ३७०वें अनुच्छेद के औचित्य और अनौचित्य के सम्बन्ध में बहुत बहस हुई है, परन्तु उसका स्वरूप क्या है, उसकी जरूरत क्या है, या उसका क्या परिणाम होगा— इस बारे में दलगत राजनीति से हटकर कभी विचार करने का प्रयत्न नहीं किया गया। उसका स्वरूप क्या है, इस सम्बन्ध में संविधान में उल्लिखित कानूनी ढंग की शब्दावलि को उद्धृत करने के बजाय उसका सार रूप से उल्लेख करना अधिक समीचीन होगा, ताकि शब्दजाल में उलझने के बजाय सुबोध ढंग से बात आसानी से समझ में आ सके।

उस अनुच्छेद में कहा गया है कि "जम्मू कश्मीर के लिये विधि बनाने की भारतीय संसद की शक्ति उन्हीं विषयों तक सीमित होगी जिनको राष्ट्रपति उस राज्य से परामर्श करके, विलय पत्र में निर्दिष्ट उपबन्धों के अनुसार राज्य के लिये तत्स्थानी घोषित कर दें। राज्य सरकार से परामर्श करके और उसकी सहमति से ही ऐसा किया जा सकेगा, अन्यथा नहीं।

"यदि राज्य की संविधान सभा बनाने से पहले ऐसी किसी विधि को व्यवस्था की जाये, तो उसे संविधान सभा के समक्ष रखा जाए और उसकी सिफारिश पर ही वह लागू हो सकेगा।"

सन् १९५१ में राज्य में संविधान सभा बनाने के मुद्दे पर निर्वाचन हुआ और ११ अगस्त सन् १९५२ को कश्मीर की संविधान सभा में शेख अब्दुल्ला ने कहा कि "२४ जुलाई सन् १९५२ को मेरे और पं० नेहरू के बीच दिल्ली करारनामा हुआ है, जिसे भारतीय संविधान में ३७० वें अनुच्छेद के द्वारा वैधानिक दर्जा दिया गया है। इसके अन्तर्गत भारत ने कश्मीर की विशेष स्थिति स्वीकार करके उसे पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की है। अब राज्य में शासक के स्थान पर अध्यक्ष का चुनाव होगा जो पांच वर्ष के लिये चुना जायेगा। भारतीय संविधान में जो मौलिक अधिकार दिए गये हैं वे कश्मीर को भी प्राप्त होंगे, परन्तु इससे राज्य के भूमि सम्बन्धी कोई कानून प्रभावित नहीं होंगे। भारतीय उच्चतम न्यायालय का अधिकार क्षेत्र भी कश्मीर के बारे में केवल अन्तर्राज्यीय विवाद, मौलिक अधिकार, सुरक्षा, वैदेशिक मामले और संचार तक सीमित रहेगा। भारतीय ध्वज को मान्यता देते हुए भी कश्मीर के अलग ध्वज को मान्यता दी गई है। भारत के राष्ट्रपति के कोई संकटकालीन अधिकार भी इस राज्य पर राज्य की सहमति से ही लागू हो सकेंगे।"

इस प्रकार इस अनुच्छेद के द्वारा कलम के एक झटके से ही जहां कश्मीर रियासत पर महाराज हरिसिंह के राजवंश का अधिकार समाप्त कर दिया गया, वहां किसी भी राष्ट्र की एकता के प्रतीक एक प्रधान, एक विधान और एक निशान पर भी प्रश्न चिह्न लगा दिया गया। अर्थात् कश्मीर का अपना अलग संविधान रहेगा, जो भारत के राष्ट्रपति के लिये भी बाध्यकारी

होगा, उसका अपना अलग प्रधान या राष्ट्राध्यक्ष होगा और उसका अपना अलग ध्वज होगा। अलगाव के लिये फिर बाकी बचा क्या?

नेहरू की दोस्ती कितनी दूर तक मार करती है? शेख अब्दुल्ला के "हां" कहने पर ही नेहरू ने कश्मीर का भारत-विलय स्वीकार किया था, यह हम पहले श्री मेहरचन्द महाजन के वक्तव्य से स्पष्ट कर चुके हैं। इस "हां" के उपहार स्वरूप विलय-पत्र पर हस्ताक्षर वाले दिन ही शेख को कश्मीर का प्रधानमंत्री बनाना तय हो गया। शेख ने भारत-विलय की स्वीकृति क्यों दी थी, यह आगे के लिए छोड़ रहे हैं। स्वयं शेख अब्दुल्ला ३७० वें अनुच्छेद का यह मसविदा लेकर नेहरू जी के पास गये थे। नेहरू ने उन्हें विधिमंत्री डॉ॰ अम्बेडकर के पास भेजा। इस मसविदे को देखकर डॉ॰ अम्बेडकर ने शेख से कहा—"आप चाहते हैं कि भारत की सेना कश्मीर की रक्षा करे, भारत वहां सड़कें बनाए, अन्य विकासकार्य करे, लोगों को राशन दे, परन्तु भारत को कश्मीर पर कोई अधिकार न हो, यह बात मैं हरगिज नहीं मान सकता।" तब शेख वापस फिर नेहरू के पास गये और कहा कि यदि आप कश्मीर की संविधान सभा द्वारा कश्मीर के भारत-विलय की पुष्टि करवाना चाहते हैं और जनमत में कश्मीरियों का भारत के पक्ष में मतदान चाहते हैं, तो मैं इस अनुच्छेद के बिना कश्मीरी मुसलमानों से वैसा नहीं मनवा सकूंगा। यह धमकी थी, या भारत के पक्ष में मतदान की कीमत थी, या मित्रता का उपहार था। कुछ भी कह लीजिये। आखिर ३७० अनुच्छेद भारत के संविधान में जोड़ दिया गया।

माउन्टबेटन ने विलय की स्वीकृति वाले पत्र के साथ एक अलग पत्र में जनमत की जो पख लगा दी थी उसे सार्थक करने के लिए ३७० अनुच्छेद स्वीकार किया गया। जिस तरह एक असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिये साथ में सौ असत्य और घड़ने पड़ते हैं, उसी प्रकार भारतीय संविधान के परिशिष्ट 1, परिशिष्ट 2 और परिशिष्ट 4 में लगभग ५४ पृष्ठों में इस ३७०वें अनुच्छेद के स्पष्टीकरणों की भरमार है।

इस अनुच्छेद के अनुसार और उसके स्पष्टीकरणों के अनुसार, इस समय संवैधानिक स्थिति क्या है— यह जान लेना आवश्यक है।

सबसे पहली बात तो यह कि यह एक अस्थायी और संक्रमणकालीन व्यवस्था थी। ३७० अनुच्छेद कश्मीर का कोई मूल अधिकार नहीं है। स्वयं नेहरू ने लोकसभा में कहा था- "चिन्ता की कोई बात नहीं, यह अनुच्छेद स्वयं धीरे धीरे घिसते घिसते घिस जायेगा। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत कश्मीर भारत से जुड़ा रहता है और कुछ हद तक अलग भी रहता है।" अन्य भारतीय नेताओं ने सदा यही व्याख्या की कि कश्मीर का भारत-विलय अन्य राज्यों की तरह बिना किसी शर्त के और पूर्ण है, समय आने पर इस अनुच्छेद को समाप्त कर दिया जायेगा।

जब कश्मीर की संविधान सभा ने भारत-विलय का पूरी तरह समर्थन कर दिया, तब ३७० अनुच्छेद को जिस प्रयोजन के लिये अस्थायी रूप से स्वीकार किया गया था, वह प्रयोजन भी समाप्त हो गया। तब यह अनुच्छेद भी समाप्त हो जाना चाहिये था। जनमत की बात भी तब निरर्थक हो चुकी थी, क्योंकि संविधान सभा ने 'अन्तिम रूप से' भारत विलय का समर्थन कर दिया था। सचाई तो यह है कि कश्मीर की संविधान सभा भी सन् १९५६ में समाप्त हो चुकी है, क्योंकि उसका काम राज्य का संविधान बनाना था, वह बन गया तो संविधान सभा भी समाप्त हो गई। अब इस ३७० वें अनुच्छेद के समर्थक कुछ 'अति बुद्धिमान' महानुभाव यह तर्क देते हैं कि इस अनुच्छेद को कश्मीर की संविधान सभा ने स्वीकार किया था, इसलिये वही इसे हटा सकती है। वह नहीं रही तो अब इसे हटाने का अधिकार और किसी को नहीं। परन्तु इस अनुच्छेद को यदि भारत ने स्वीकार नहीं किया होता तो यह लागू हो ही नहीं सकता था और जब भारत ने स्वीकार किया था तब शर्त यही थी कि इसे समय आने पर हटा दिया जायेगा।

इस समय संवैधानिक स्थिति यह है कि यदि कश्मीर राज्य की किसी विधानसभा में पूर्णतः भारत-विरोधी तत्वों का बहुमत हो जाये, तो भी वे कश्मीर को भारत से अलग होने का कानूनी फैसला नहीं कर सकते, क्योंकि भारतीय संविधान के १४७ वें अनुच्छेद के अनुसार कश्मीर विधान सभा को भारत शासन अधिनियम १९३५ के अधीन बनाये गये आदेश के किसी सारवान् अंश को हटाने का अधिकार नहीं है।

पर हां, भारतीय संविधान में ३७० वें अनुच्छेद के प्रावधान में खण्ड ३ के अनुसार यह व्यवस्था भी है: "इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा घोषणा कर सकेगा कि यह अनुच्छेद प्रवर्तन में नहीं रहेगा।"

इसके साथ ही अगले पैरे में यह उपबन्ध भी है कि राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अधिसूचना जारी किए जाने से पहले निर्दिष्ट राज्य की संविधान सभा की सिफारिश आवश्यक होगी। क्योंकि संविधान सभा सन् १९५६ में समाप्त हो चुकी है, इसलिये अब यह पूरी तरह राष्ट्रपति के अपने विवेक पर निर्भर है कि वे इस ३७० वें अनुच्छेद को जब चाहें, समाप्त कर दें।

राष्ट्रपति का यह विवेक कब जागेगा?



श्लोकस्तु श्लोकतां याति यत्र तिष्ठन्ति साधवः।
लकारो लुप्यते तत्र यत्र तिष्ठन्त्यसाधवः॥

जहां सज्जन होते हैं वहां श्लोक भी प्रशंसा के योग्य होता है। पर जहां दुर्जन होते हैं, वहां श्लोक का लकार लुप्त हो जाता है— अर्थात् केवल शोक ही पीछे बचता है।

प्रगति में भी भेदभाव

स्वतंत्रता-प्राप्ति अर्थात् सन् १९४७ से पूर्व कश्मीर राज्य के सभी अधिकार वैधिक, न्यायिक और कार्यकारी— महाराजा में निहित थे। विधानमण्डल के बाहर के भी कुछ अधिकार महाराजा को प्राप्त थे। राज्य की सेना का अधिकार अकेले महाराजा के पास था। ब्रिटिश अधिकारियों तथा अन्य राज्यों से वार्ता करने और सन्धि आदि करने का एकमात्र अधिकार महाराजा को ही था।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद महाराजा ने पहला काम जो किया वह था प्रधानमंत्री रामचन्द्र काक को हटाकर श्री मेहरचन्द महाजन को अपना प्रधानमंत्री बनाना। २९ सितम्बर १९४७ को शेख अब्दुला को रिहा किया गया। अक्तूबर में कबायलियों ने हमला किया तो महाराजा ने भारत से सहायता की अपील की। २६ अक्तूबर को कश्मीर के भारत विलय पर हस्ताक्षर हुए। जम्मू-कश्मीर अन्य राज्यों की तरह भारत का विधिवत् अंग बन गया और उसकी सुरक्षा का सारा दायित्व भारत सरकार पर आ पड़ा।

कश्मीर में शेख अब्दुला की अध्यक्षता में ३० अक्तूबर १९४७ को अन्तरिम सरकार बनाई गई। नैशनल कान्फ्रेन्स की मांग थी कि पूरी सरकार उसी की हो। १७ मार्च सन् १९४७ को शेख अब्दुल्ला नई लोकप्रिय सरकार के प्रधानमंत्री बने। महाराजा ने राज्य में सामान्य स्थिति कायम होने पर वयस्क मताधिकार के आधार पर नैशनल असेम्बली बनाने और उसके द्वारा नया संविधान बनाने की घोषणा की। १५ अक्तूबर, १९५१ को चुनाव हुए और असेम्बली के कुल ७५ स्थानों पर नेशनल कान्फ्रेन्स के उम्मीदवार चुने गए। कश्मीर विधानसभा की पहली बैठक ३१ अक्तूबर सन् १९५१ को हुई और १७ नवम्बर, सन् १९५६ को उसने नया संविधान तैयार कर लिया।

संविधान सभा की पहली बैठक में ही शेख अब्दुल्ला ने कहा कि इस संविधान सभा के चार मुख्य कार्य हैं-संविधान बनाना, राजा के खानदान का भविष्य तय करना, जमींदारों को मुआवजा देने की मांग पर विचार करना और राज्य के विलय के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करना।

सबसे पहले जमींदारी उन्मूलन के अन्तर्गत भू-स्वामियों को मुआवजा देने के प्रश्न पर विचार किया गया। राजस्व मंत्री अफजलबेग ने कहा कि सारी जमीन किसानों की है, उसी पर अनुचित रूप से जबर्दस्ती अधिकार किया गया है, अब वही जमीन किसानों को वापस की जा रही है, इसलिये मुआवजे का कोई प्रश्न ही नहीं है।

उस समय भूमि के सम्बन्ध में तीन प्रकार के वर्ग थे— जागीरदार, माफीदार और मुकर्रीदार। राज्य को अर्पित सेवा के बदले जो जमीनें दी गई थीं उन्हें जागीर कहा जाता था। जिन लोगों और संस्थाओं को दान-स्वरूप

जमीन दी गई थी, वे माफीदार कहलाते थे। मुकर्ररीदार वे थे जिन्हें राज्य की किसी प्रकार की राजनीतिक सेवा के बदले दान रूप में नकद राशि या कुछ जमीन दी जाती थी। इन सबको प्रतिवर्ष राज्य की ओर से कई लाख रु. दिया जाता था।

नई सरकार ने भूमि सुधार के नाम पर ये तीनों वर्ग समाप्त कर दिये, सारी जमीन अपने अधिकार में ले ली, धार्मिक संस्थाओं को दी गई जमीन छोड़ दी। समस्त मध्यवर्ती अधिकार समाप्त कर दिये। अधिकांश जमीन किसानों में बाँट दी गई और शेष अपने पास रख ली।

भूमि सुधारों के अलावा आर्थिक मोर्चे पर भी योजनायें बनाकर काफी धनराशि खर्च की गई। इससे गेहूं, चावल, मक्का, तथा फलों के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई। उद्योगों में अधिक से अधिक रोजगारों की व्यवस्था की गई। राज्य के विकास के लिये घड़ी बनाने का कारखाना, टेलिफोन के हिस्से और ट्रांजिस्टर रेडियो बनाने का कारखाना खोलने की योजना तैयार हुई और उस पर अमल शुरू हो गया। औद्योगिक विकास के लिये राज्य की ओर से आर्थिक सहायता की गई।

सिंचाई और बिजली की आपूर्ति बढ़ाने के उपाय किए गये। नई सड़कें बनाई गईं। १९५५ में बनिहाल सुरंग पर काम शुरू किया गया और वह सन् १९५९ में पूरा हो गया। इस सुरंग के बन जाने से कश्मीर घाटी का सम्पर्क सारे साल सभी मौसमों में देश के अन्य भागों से जुड़ गया।

ऊनी शाल, नमदे, कालीन और फलों को बाहर भेजने के लिये निर्माणकर्ताओं और उत्पादकों को परिवहन शुल्क में परिवहन विभाग की ओर से ५० प्रतिशत तक की छूट दी गई।

जनता को शिक्षा की ओर प्रवृत्त कराने के लिये प्राथमिक कक्षाओं से लेकर स्नातकोत्तर कक्षाओं तक शिक्षा निःशुल्क कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि आजादी के बाद जैसे सारे भारत में शिक्षा का विस्फोट हुआ, वैसे ही कश्मीर में भी स्कूलों और कालिजों की संख्या दुगनी हो गई। सबसे अधिक वृद्धि छात्राओं की संख्या में हुई। इस से पूर्व लड़कियों को शिक्षा देना, खासतौर से इस्लाम में, वर्जित माना जाता था। शिक्षा पाने वाली

लड़कियों की संख्या में दो सौ गुना तक वृद्धि हुई। स्वास्थ्य और चिकित्सा पर भी कई गुना राशि खर्च हुई।

कश्मीर के सन्दर्भ में पर्यटकों का भी विशेष महत्व है। स्वतंत्रता के बाद पर्यटन को बाकायदा व्यावसायिक रूप दिया गया, इस हद तक कि कश्मीर की आय का यह एक प्रमुख साधन बन गया। पहले देशी पर्यटकों की संख्या मुश्किल से 1-2 हजार रही होगी और विदेशी पर्यटकों की सौ-दो सौ। स्वतंत्रता के बाद यह संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती गई। जब से भारत सरकार ने छात्रों और अध्यापकों को सारे भारत में एल.टी.सी. (लीव ट्रेवलिंग कन्सैशन) देना शुरू किया, तबसे तो कश्मीर में भारतीय पर्यटकों की संख्या लाखों तक पहुंच गई। "कन्सैशन" के कारण उत्तर भारत के छात्र और अध्यापक बड़ी संख्या में रामेश्वरम और कन्याकुमारी जाते थे और दक्षिण भारत के लोग कश्मीर। सन् ८२ में अपनी अन्तिम कश्मीर यात्रा के समय लेखक ने श्रीनगर में स्वयं अपनी आंखों से देखा कि किसी बाजार में, होटल में या आवास स्थान में दक्षिण भारतीयों की भीड़ के कारण तिल रखने की जगह नहीं थी। इस भीड़ से चिढ़कर एक मुसलमान टैक्सी ड्राईवर ने कहा: "भारत सरकार हम कश्मीरियों पर अपना रौब जमाने के लिये इतने लोगों को पैसा देकर यहां भेजती है।" उसका इशारा उस कन्सैशन की तरफ ही था। लेखक ने तब उस ड्राईवर से कहा था—"भारत सरकार अपना रौब जमाने के लिये नहीं, कश्मीरियों को भूखा मरने से बचाने के लिये ऐसा करती है।"

तथाकथित आजाद कश्मीर का क्या हाल था। आजाद कश्मीर सरकार की स्थापना 3 अक्तूबर, १९४७ को रावलपिण्डी के एक होटल में हुई थी। २४ अक्तूबर को सरदार इब्राहिम ने कबायलियों द्वारा कब्जाये गये इलाके पर आजाद कश्मीर सरकार का झण्डा फहराया। पर उस पर असली नियंत्रण पाकिस्तान का ही रहा। वहां आए दिन सरकार बनती रही, बिगड़ती रही। कश्मीर घाटी प्रगति के सोपान पर आगे बढ़ती रही, पर आजाद कश्मीर की हालत बद से बदतर होती गई। वहां आय का या रोजगार का कोई साधन नहीं था। हजारों लोग भूख से मर चुके थे। जीवनोपयोगी वस्तुओं

का सर्वथा अभाव था। फलतः लोगों में अपराध और दस्युप्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। कश्मीर घाटी के विकास को वे ललचाई नजरों से देखते थे। उसे किसी तरह हस्तगत करने की उनकी चाह भी बढ़ती जाती थी।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कश्मीर ने विभिन्न क्षेत्रों में जितनी प्रगति की उसका श्रेय भले ही कश्मीर की लोकतंत्रीय सरकार को दिया जाये, पर असली श्रेय तो भारत सरकार को ही है, जिसने करोड़ों रु. अनुदान के रूप में कश्मीर में उलीचने में कसर नहीं छोड़ी। हमने जानबूझकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की प्रगति के आंकड़े उपलब्ध होने पर भी नहीं दिए जिससे पाठक "बोर" न हों। कश्मीरियों को भारत सरकार की ओर से जिस सस्ते भाव पर चावल दिया जाता था, उतना सस्ता देश भर में और कहीं नहीं था। हां, भारत सरकार द्वारा दिए गए धन के कारण शेख अब्दुल्ला के मन में छिपे साम्प्रदायिकता के चोर को खुलकर खेलने का पूरा मौका अवश्य मिल गया। यों भी ९० प्रतिशत आबादी मुस्लिम होने के कारण सर्वाधिक लाभ मुसलमानों को ही पहुंचता था। पर हरेक क्षेत्र में हिन्दुओं से भेदभाव करने की राज्य सरकार की नीति ने हिन्दुओं की संस्थागत रूप से अपार हानि की। स्कूलों में, कालिजों में, कारखानों में, सरकारी नौकरियों में, सर्वत्र मुसलमानों को प्राथमिकता मिलती, योग्य होने पर भी हिन्दू टापते ही रह जाते। इसी भेदभाव के कारण भूमि सुधार के नए कानूनों में डोगरे जागीरदार भूमिहीन हो गए, एवं जम्मू और लद्दाख हिन्दू-बहुल या बौद्ध-बहुल होने के कारण सर्वथा उपेक्षित हो गए,जबकि वे भी राज्य का अंग होने के कारण कश्मीर घाटी की तरह ही विकासकार्यों के समान रूप से हकदार थे। शनैः शनैः शेख साहब का असली रूप सामने आने लगा।



खलानां कण्टकानां चैव द्विविधैव प्रतिक्रिया।
उपानत्मुखभंगो वा दूरतो वा विसर्जनम्॥

दुष्ट जनों और काँटों के प्रतिकार के दो ही उपाय हैं—जूते से उनका मुख कुचल दे अथवा उनको सदा अपने से दूर ही दूर रखे।

पाकिस्तान का फिर आक्रमण

कुछ पौधे ऐसे होते हैं कि उन्हें जीवित रखने के लिये खास तरह की खाद चाहिये। पाकिस्तान भी एक ऐसा ही कैक्टस है जो बिना भारत-विरोध की खाद के जीवित नहीं रह सकता। उसकी घुट्टी में भारत-विरोध है, इसलिये वह उससे बाज नहीं आ सकता। वह अपनी जन्मपत्री पर ही लात कैसे मार देगा?

सन् १९४७ में कबायली हमलावरों के वेष में पाकिस्तान के सैनिकों को भेजकर, जिनका नेतृत्व जनरल तारिक के नाम से अयूब खां के भाई

कर रहे थे, मुंह की खाकर भी वह बाज नहीं आया। भारत ने अपने अनुकूल परिस्थितियों की अवहेलना करके भी युद्धविराम स्वीकार किया था और वह अपनी ओर से उसका पूरी तरह पालन कर रहा था। पर पाकिस्तान ने कभी ईमानदारी से उसका पालन नहीं किया, वह लगातार सीमा का अतिक्रमण करता रहा और इन अतिक्रमणों की संख्या निरन्तर बढ़ती रही। संयुक्त राष्ट्रीय प्रेक्षक नियुक्त हो जाने पर भी इन अतिक्रमणों की सुरक्षा परिषद ने कभी परवाह नहीं की।

सुरक्षा परिषद की बहस के दौरान स्वार्थबद्ध पाश्चात्य देशों ने कभी अपनी आंखों पर से पक्षपात की ऐनक नहीं उतारी। २३ जनवरी, १९५७ को भारतीय प्रतिनिधि के रूप में बी०के० कृष्णमेनन ने लगातार तीन बैठकों में अपने भाषण में पाकिस्तान के आरोपों का मुंहतोड़ जवाब दिया। यदि पाक विदेशमंत्री सर जफरुल्ला खां ने ५-३० घंटे तक भाषण देकर सबको प्रभावित किया था, तो ९ घंटे तक जोरदार भाषण देकर मेनन ने भले ही सब रिकार्ड तोड़ दिए हों, पर सुरक्षा परिषद के कानों में जूं नहीं रेंगी। मेनन ने कहा था— "कश्मीर समस्या कोई प्रादेशिक विवाद नहीं है, प्रश्न वस्तुतः आक्रमण का है। जनमत संग्रह का प्रश्न तभी पैदा होता है जब १३ अगस्त के संकल्प के भाग २ को (हमलावरों और अपनी सेना को कश्मीरी प्रदेश से- जिसका "आजाद कश्मीर" भी हिस्सा है— हटा लेने को) पाकिस्तान क्रियान्वित कर दे। पर उसने उस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। उल्टे गिलगित, चित्राल और बालतितान में हवाई अड्डे बना लिये, अपनी सैन्य शक्ति में वृद्धि कर ली, इसलिये भारत द्वारा किसी संकल्प के उल्लंघन का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।"

परन्तु आस्ट्रेलिया, कोलम्बिया, क्यूबा, ब्रिटेन और अमरीका ने मेनन का भाषण समाप्त होने से पूर्व ही एक प्रस्ताव का प्रालेख तैयार कर रखा था जिसे सब सदस्यों में स्वीकृति के लिये वितरित कर दिया गया। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि कश्मीर संविधान सभा को राज्य के भविष्य का निर्णय करने का अधिकार नहीं है। इसके उत्तर में श्री मेनन ने कहा कि "यह प्रस्ताव कश्मीर के अन्दरूनी मामले में हस्तक्षेप का द्योतक है, इसलिये भारत को स्वीकार्य नहीं है।"

उसके बाद अप्रैल १९६२ की बैठक में मेनन ने यहां तक कह दिया कि "जम्मू कश्मीर राज्य का अधिमिलन पूर्ण हो चुका है, इसलिये भारत अपनी किसी भी इकाई को भारतीय संघ से अलग होने की अनुमति नहीं दे सकता। भारत ने पहले जनमत की बात कही थी, किन्तु अब स्थिति में इतना परिवर्तन आ गया है कि वह सर्वथा निरर्थक है।" मेनन ने पूरे आत्मविश्वास और राष्ट्रीय स्वाभिमान के साथ कहा, "आप सुरक्षा परिषद की कितनी ही बैठकें कर लीजिये। हम हर बैठक में उपस्थित होंगे। किन्तु हम किसी भी दशा में अपनी सर्वोच्च सत्ता का व्यापार नहीं करेंगे। किसी भी दशा में हम अपनी परम्परा को नहीं बेचेंगे। हम किसी भी दशा में भारत का विघटन नहीं होने देंगे।"

मेनन की इस साफगोई से और उसके साम्राज्यवाद-विरोधी रुख से सुरक्षा परिषद के सदस्य अन्दर ही अन्दर और जल-भुन गए और "शेषं कोपेन पूरयेत्" की मुद्रा में आ गए। इससे पाकिस्तान का हौसला और बढ़ा। कम्युनिस्ट चीन के विरुद्ध अमरीका को ब्लैकमेल करने के लिये उसने चीन से दोस्ती प्रारम्भ कर दी और अवैध रूप से अपने कब्जे में लिये भारतीय प्रदेश का २५०० वर्ग मील का इलाका चीन को सौंप दिया। यह वैसी ही बात हुई कि कोई चोरी का माल किसी और को उपहार में दे दे। पाकिस्तान की चीन से दोस्ती का प्रयोजन केवल अमरीका को यह दिखाना था कि यदि तुम पूरी तरह मेरा साथ नहीं दोगे तो मैं तुम्हारे दुश्मन से मिल जाऊंगा।

इस उपहार से चीन का भी हौसला बढ़ गया और अन्ततः अक्तूबर १९६२ में उसने भारत के उत्तर-पूर्वी सीमान्त (नेफा) पर और लद्दाख के सिंकियांग पर हमला कर दिया। वह नेहरू द्वारा 'हिन्दी चीनी भाई भाई' के नारे का युग था। नेहरू को कभी स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि जब चोर चोर मौसेरे भाई परस्पर मिल जायेंगे, तब हिन्दी चीनी भाई भाई की धज्जियां उड़ जायेंगी। नेहरू बकौल खुद "मूर्खों के स्वर्ग" में रह रहे थे।

सन् १९६२ की लड़ाई में भारत को चीन के हाथों पराजय का मुंह देखना पड़ा। चीन का यह विश्वासघात ही नेहरू को अन्दर से तोड़ देने

वाला सिद्ध हुआ। भारत सरकार को भी शान्ति के कबूतर उड़ाते रहने की नीति का खोखलापन स्पष्ट हो गया। पर नेहरू का प्राण-पखेरू जब २७ मई १९६४ को चिर-शान्ति के लिये शान्ति लोक का चिर-प्रवासी बन गया तो भारत के नये प्रधानमंत्री का ताज लालबहादुर शास्त्री के सिर पर रखा गया। वह छोटा सा बौना आदमी! कहां नेहरू जैसा महान विश्वविश्रुत व्यक्ति और कहां अपने प्रान्त से बाहर अज्ञातप्राय लाल बहादुर शास्त्री!

पाकिस्तान ने सोचा कि इससे बढ़कर और कौन सा मौका मिलेगा? उसने जनवरी १९६५ में कच्छ पर हमला कर दिया। इस तरफ से हमले की कभी भारत ने कल्पना भी नहीं की थी। पर भारतीय सैनिकों ने कठिन परिस्थितियों में भी वहां पहुंचकर पाकिस्तानी सेना की दाल नहीं गलने दी।

अयूब की असली नजर कश्मीर पर थी। कच्छ पर हमला तो जैसे भारतीय सेना का ध्यान बंटाने के लिये था। आखिर वह सैन्य-विशेषज्ञ था। उसने पूरी सामरिक व्यूहरचना बनाकर कश्मीर पर दो ओर से हमला किया-स्यालकोट की ओर से और कारगिल की ओर से। युद्ध विराम रेखा को पार करके ५००० पाकिस्तानी सैनिक नागरिक वेष में घने जंगलों और दुर्गम पहाड़ी मार्गों को पार करते हुए जम्मू-कश्मीर में घुस आये। उन्हीं दिनों श्रीनगर में 8 अगस्त को पीर दस्तगीर साहब का मेला लगने वाला था। जम्मू के लोग प्रतिवर्ष उस मेले में भारी संख्या में शामिल होते थे। हमलावरों ने सोचा था कि हम सादे वेष में मेले जाने वाले यात्रियों में मिल जायेंगे और किसी के पहचाने बिना श्रीनगर पहुंच जायेंगे। ९ अगस्त को शेख अब्दुल्ला की पहली गिरफ्तारी की वर्षगांठ मनाई जाने वाली थी। उसी दिन जनमत मोर्चे ने कश्मीर में विशाल प्रदर्शन करने की योजना बनाई। आक्रमणकारियों की योजना थी कि इस जलूस में हथियारों समेत शामिल हो जायेंगे और रेडियो स्टेशन, हवाई अड्डे तथा अन्य महत्वपूर्ण सरकारी स्थानों पर कब्जा कर लेंगे। कुछ आक्रमणकारी दक्षिण और उत्तर-पूर्व में आगे बढ़कर जम्मू-कश्मीर मार्ग को काट देंगे, जिससे लद्दाख में विद्यमान भारतीय सैनिकों को रसद पहुंचनी बन्द हो जाये। फिर एक क्रान्तिकारी परिषद बनाकर उसे जम्मू-कश्मीर की सरकार घोषित कर देंगे।

घुसपैठिये कश्मीर में घुस तो आये पर उनकी कोई योजना सफल नहीं हो पाई। इसका मूल कारण यह था कि स्थानीय लोगों ने उन्हें किसी प्रकार की सहायता नहीं दी। उनका राशन खत्म हो गया और गोलाबारूद भी समाप्त हो गया, तो वे युद्ध विराम रेखा पार कर अपने प्रदेश में भागने को विवश हो गए। तब यह स्पष्ट हो गया कि यदि घाटी को सुरक्षित रखना है तो उस क्षेत्र पर भी कब्जा करना होगा जहां से घुसपैठिये आ रहे थे।

भारतीय सैनिकों को उड़ी के दक्षिण में युद्ध-विराम रेखा को पार कर पाकिस्तानी अड्डों को समाप्त करने के लिये भारी बलिदान देकर हाजीपीर दर्रे पर कब्जा करना पड़ा। इस दर्रे पर कब्जा होते ही घुसपैठियों का आगमन अवरुद्ध होगया। तब भारतीय सेना ने आगे बढ़कर आजाद कश्मीर के भी कुछ भागों को मुक्त करा लिया। वहां की जनता ने भारतीय सैनिकों का हार्दिक स्वागत किया क्योंकि उन्हें पाकिस्तान के दमनचक्र से १८ वर्षों बाद मुक्ति मिली थी।



व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान्
असंवृतांगान्निशिता इवेषवः॥

जो छली दुर्जनों के साथ भी सज्जनता का ही बर्ताव करते हैं वे मूर्ख हैं और पराभव को प्राप्त होते हैं। जिस तरह खुले हुए अंगों को तेज बाण छेद डालते हैं, वैसे ही दुष्ट लोग भी चुपचाप घुसकर प्रहार कर जाते हैं। शठों के साथ शठता ही उचित है।

एक खतरनाक योजना

भारतीय सेना इसी प्रकार पाकिस्तानी चौकियों का सफाया करते हुए लगातार आगे बढ़ती जा रही थी। तब पाकिस्तान ने एक अत्यन्त खतरनाक योजना पर अमल शुरू कर दिया। यदि इस योजना में पाकिस्तान सफल हो जाता तो भारत की स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती। पाकिस्तान ने सीमा का उल्लघंन करके एक पूरी पैदल बिग्रेड, ७० टैंक और दो रैंजिमेंटों के साथ छम्ब-जोड़ियां क्षेत्र में जबर्दस्त आक्रमण कर दिया। वह अखनूर के पुल को उड़ाकर जम्मू-कश्मीर को शेष भारत से काट देना चाहता था और

जम्मू में विद्यमान भारतीय सेना को चारों ओर से घेर लेना चाहता था। छम्ब-जोड़ियां वाला क्षेत्र इतना संकरा है कि पाकिस्तान के लिए इस पर कब्जा कर के जम्मू पहुंचना आसान था। भौगोलिक स्थिति सर्वथा उसके पक्ष में थी। इसीलिए इस स्थान को 'चिकननेक' कहा जाता है—अर्थात् मुर्गी की गर्दन। गर्दन मरोड़ी कि मुर्गी गई। वह इसी गर्दन को मरोड़ना चाहता था। पाकिस्तान के पास अमरीका के आधुनिक पैटन टैंकों की भरमार थी, ऊपर से पाकिस्तानी बमवर्षकों की बमवर्षा। मैदानी इलाका होने के कारण यह टैंकों के लिए बहुत सुविधाजनक था और भारत ने टैंक युद्ध से निपटने की तैयारी नहीं की थी।

भारतीय वायुसेना ने अपनी अद्‌भुत वीरता का परिचय दिया और इस प्रदेश को टैंकों का कब्रिस्तान बना दिया। इस पर पाकिस्तान ने भारतीय हवाई सीमा का उल्लंघन करते हुए नागरिक क्षेत्रों पर भी बमवर्षा शुरू कर दी। उसने अमृतसर पर भी राकेट गिराए।

तब वह भारत का छोटा सा बौना प्रधानमंत्री वामनावतार बन कर उभरा। उसने अपने "लालबहादुर" नाम को सार्थक करते हुए भारतीय राजनीति में एक नए तत्व का समावेश किया, जो उससे पहले कहीं दिखाई नहीं देता। उससे पहले भारत सरकार सदा यही कहती आई कि हम केवल आत्मरक्षा करेंगे, अपनी ओर से शत्रु पर हमला नहीं करेगें। पर उस बहादुर वामनावतार ने कहा— "आत्मरक्षा ही नहीं, हम शत्रु पर हमला भी करेंगें।" यह था 'यथा योग्य बर्ताव" का नमूना जो इससे पहले भारत की आधुनिक रक्षानीति की शब्दावली में नहीं था।

इस बीच संयुक्तराष्ट्र संघ के महासचिव श्री ऊ थां ने भारत और पाकिस्तान से युद्ध-विराम की अपील की। पर पाकिस्तान को अपनी उक्त व्यूहरचना पर इतना विश्वास था कि उसने उस अपील को ठुकरा दिया। चीन ने भी पाकिस्तान की पीठ थपथपाई। तभी अयूब खां ने गर्वोक्ति की थी कि हम टहलते टहलते लालकिले पहुंच जाएंगे और वहां फिर मुगलिया झण्डा लहरा देंगे। वाघा की सीमा को पार कर भारतीय सेना लाहौर की ओर बढ़ चली। इस ३० मील की दूरी को पाकिस्तान ने जर्मनी की सिगफ्रीड लाइन की तरह

इच्छोगिल नहर और स्थान स्थान पर बनाए पिल बाक्सों के कारण अभेद्य बना रखा था। पर लड़ाई में हथियार नहीं, आदमी ही असली लड़ाई लड़ते हैं। भारतीय सैनिकों ने अपनी वीरतापूर्ण 'आदमियत' का परिचय देते हुए डोगराई, खालरापार, खेमकरण और कसूर को पार करके लाहौर में प्रवेश कर दिया।

तब पाकिस्तान की नानी बौखलाई। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने चौंक कर जबान खोली और एक गलत बयान दिया कि भारत की सशस्त्र सेना ने अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पार करके युद्ध का विस्तार कर दिया है। विलसन साहब उस समय तो नहीं बोले जब पाक घुसपैठियों ने कश्मीर पर हमला किया था। पर जब भारत ने पाकिस्तान के हमले का नहले पर दहला जवाब दिया, तो अपने हाथों बनाया नकशा बिगड़ता देखकर उन्हें मिर्चे लग गईं। असल में तो भारत की यह कार्रवाई भी आक्रमणात्मक न होकर आत्मरक्षात्मक ही थी।

सुरक्षा परिषद के माध्यम से जल्दी से जल्दी युद्धविराम करवाने के प्रयत्न होने लगे। संयुक्तराष्ट्रीय महासचिव ऊ थां ने १४ सितम्बर १९६५ की शाम से युद्ध-विराम करवाना चाहा, पर पाकिस्तान फिर आनाकानी करने लगा। इसका कारण यह था कि चीन ने भारत को अल्टिमेटम दिया था, इसीलिए पाकिस्तान ने उस समय युद्धविराम स्वीकार नहीं किया। पाकिस्तान चाहता था कि चीन भी भारत पर हमला कर दे। पर २२ सितम्बर को चीन की बन्दरभभकी वाला अल्टिमेटम समाप्त हो गया, तो उसके कुछ घण्टे बाद ही पाकिस्तान ने युद्धविराम स्वीकार कर लिया। इस प्रकार २२ सितम्बर, १९६५ की रात को १० बजे युद्धविराम लागू हो गया।

यह २२ दिन की लड़ाई भारत की वीरता की कहानी है। इस लड़ाई में पाकिस्तान के ४७१ टैंक नष्ट हुए, जिनमें २६२ पैटन टैंक शामिल थे—जिन पर अमरीका और पाकिस्तान दोनों को बड़ा नाज था। इन भारी-भरकम टैंकों को नष्ट करने का श्रेय मिला भारत के छोटे से नेट नामक विमानों को। 'नेट' (GNAT) का अर्थ जानते हैं न, अरे वही "छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशंकः" की ख्याति वाला मच्छर। भारतीय सेना ने कारगिल की भी

तीन पाकिस्तानी चौकियों पर कब्जा कर लिया और टिथवाल के प्रदेश में वह २० मील अन्दर तक घुस गई। उड़ी-पुंछ क्षेत्र में २०० वर्गमील, स्यालकोट क्षेत्र में १८० वर्गमील, पंजाब में १४० वर्गमील और राजस्थान सिंध सीमा पर १५० वर्गमील क्षेत्र पर भारतीय सेना का कब्जा हो गया था। इस प्रकार कुल मिलाकर ६९० वर्गमील पर भारतीय सेना का नियंत्रण था, जब कि पाकिस्तान अपनी खतरनाक योजना के घमण्ड में भी भारत के केवल २१० वर्गमील पर ही आधिपत्य स्थापित कर सका था—१९० वर्गमील छम्ब क्षेत्र में और २० वर्गमील पंजाब क्षेत्र में। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यदि लालबहादुर शास्त्री ने भारतीय सेना को लाहौर की ओर बढ़ने का इशारा न किया होता तो छम्ब-जोरियां की 'चिकननेक' वाली खतरनाक योजना भारत के लिए बहुत मंहगी पड़ती। इसीलिए हमने लाहौर वाले अभियान को आत्मरक्षक कार्रवाई कहा है। जहां तक हताहतों का प्रश्न है, इस लड़ाई में पाकिस्तान के ५८०० से अधिक जवान और अधिकारी मारे गए, जबकि भारत के १६१ अधिकारी और २०३५ अन्य कर्मचारी मारे गए। दोनों ओर के १५०० व्यक्ति लापता रहे।

पाकिस्तान की प्रार्थना पर सुरक्षा परिषद की २५,२७ और २८ अक्तूबर को फिर बैठक हुई। उसमें पाकिस्तान के उस समय के विदेशमंत्री थे जुल्फिकार अली भुट्टो (पाठकों को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि जब पाकिस्तान में कादियानी मुसलमानों के विरोध में आन्दोलन चला तो जफरुल्ला खां को पाकिस्तान से हटाकर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में भिजवा दिया गया क्योंकि वे भी कादियानी मुसलमान थे। वाह री पाकिस्तानी मतान्धता! आज भी पाकिस्तान में कादियानियों को मुसलमान नहीं माना जाता, क्योंकि वे हजरत मोहम्मद साहब को आखिरी नबी या पैगम्बर नहीं मानते।) ने सुरक्षा परिषद में जफरुल्ला खां से भी आगे बढ़कर भारत पर कश्मीर में अत्याचारों का काल्पनिक वर्णन करते हुए अनर्गल आरोप लगाए। भारतीय प्रतिनिधि थे तब विदेश मंत्री सरदार स्वर्ण सिंह। उन्होंने सुरक्षा परिषद से आग्रह किया कि भुट्टो को भारत के आन्तरिक मामलों में अनर्गल आरोपों से रोका जाए। पर वहां सुनने वाला कौन था! स्वर्णसिंह परिषद से

उठकर चले गए। नवम्बर में फिर सुरक्षा परिषद की बैठक हुई। उसमें भारत जानबूझ कर अनुपस्थित रहा।

तब रूस की मंत्रि-परिषद के अध्यक्ष कोसीगिन ने भारत और पाकिस्तान के मतभेदों को दूर करने के लिए अपनी सेवाएं अर्पित कीं। भारत को रूस की निष्पक्षता पर विश्वास था, इसलिए उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। ताशकंद में भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री और पाकिस्तान के प्रेजिडेण्ट अयूब खां की कोसीगिन की अध्यक्षता में बातचीत चलती रही। आखिर दोनों देशों ने १० जनवरी, १९६६ को एक घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिए।

इस घोषणा के अनुसार दोनों देश इस बात पर सहमत हुए कि दोनों देश संयुक्त राष्ट्रीय घोषणा पत्र के अनुसार आपस में अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने का प्रयास करेंगे, अपने विवाद तय करने के लिए बल प्रयोग नहीं करेंगे और शान्तिमय ढंग से उन्हें सुलझाने का यत्न करेंगे, दोनों देश आपसी तनाव दूर करने के लिए एक दूसरे के विरुद्ध विष-वमन नहीं करेंगे। इसके साथ ही दोनों देशों ने ५ अगस्त, १९६५ की स्थिति पर लौटना स्वीकार कर लिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस करारनामे से पाकिस्तान जितने लाभ में था भारत उतने ही घाटे में था। परन्तु इस घोषणापत्र ने वस्तुतः दोनों देशों के लिए यह अनिवार्य कर दिया कि वे कश्मीर समस्या तथा अन्य आपसी विवादों को केवल आपसी बातचीत से ही हल करेंगे। भविष्य में भारत-पाक युद्ध के बजाय दोनों आपस में शान्ति से रह सकेंगे, इसी आशा में लाल बहादुर शास्त्री ने इतना बड़ा दाव खेला था। वह बौना आदमी अन्दर से जितना "बहादुर" था, उतना ही विराट शान्ति का पुजारी भी था। इसलिए उस शान्ति के मसीहा ने १९६५ की लड़ाई की जीती बाजी भी हार डाली। ऐसे शान्ति के मसीहा भी बुद्ध और गान्धी के अहिंसा-प्रिय देश में ही सम्भव हैं, संसार के किसी और देश में नहीं।

पर विधि की विडम्बना देखिए कि उस करारनामे पर हस्ताक्षर करने के कुछ घण्टे बाद ही ११ जनवरी की आधी रात के कुछ देर बाद एक बजकर ३२ मिनट पर उस मसीहा का प्राणान्त हो गया। अगले दिन शान्ति के मसीहा का शव ही भारत वापस आया।

१९६५ के युद्ध के विजेता भारत के इस "लाल" का स्वाभाविक प्राणान्त हुआ या उसके पीछे भी कोई षडयंत्र था — यह गुत्थी सुलझाने का भारत सरकार ने कभी प्रयत्न नहीं किया। क्यों नहीं किया, यह मत पूछिए। पर उनके शव का नीला पड़ जाना, गले के पास एक सर्जरी का निशान, उनकी डायरी का गायब हो जाना और निधन से पहले मेज पर रखे एक गिलास की ओर उनका हाथ से इशारा करना - ये सब कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे भारतीय जनता के मन में आज भी सन्देह की गांठ बैठी हुई है।

चीन से पराजय की कीमत में देश ने नेहरू को खोया, पाकिस्तान से विजय की कीमत में लाल बहादुर शास्त्री को।

परन्तु ताशकन्द समझौते की स्याही सूखी नहीं थी कि भुट्टो ने कहना शुरू कर दिया कि जहां तक कश्मीर में बल-प्रयोग का सवाल है, हम ताशकन्द समझौते से बंधे हुए नहीं हैं। पाकिस्तान वैसे भी इसकी किसी शर्त का पालन करने को तैयार नहीं था। युद्ध में जितने टैंकों और हवाई जहाजों की क्षति हुई थी उसे उसने चीन की सहायता से पूरा कर लिया। अपना प्रतिरक्षा बजट ६० प्रतिशत बढ़ा दिया और सैनिकों की संख्या भी १,६०,००० से बढ़ाकर २,५०,००० कर दी और लड़ाकू हवाई दस्ते भी दुगने कर दिए। जब भारत ने अमरीका द्वारा पाकिस्तान को शस्त्रास्त्र दिए जाने का विरोध किया तो उसका एक चोर रास्ता यह निकाला गया कि अमरीका ने टैंक और हवाई जहाज तुर्की को दिए क्योंकि तुर्की नाटो का सदस्य था, और तुर्की से पाकिस्तान ने ले लिये। जनरल मैकार्थी ने सितम्बर, १९६८ में कहा था कि अमरीका पाकिस्तान को ६४ करोड़ डालर के शस्त्रास्त्र अब तक दे चुका है।

भारत ने ईमानदारी से ताशकन्द समझौते का पालन करने के लिए अनाक्रमण संधि का प्रस्ताव रखा, पर अयूब खां ने ठुकरा दिया। पाकिस्तान ने अपनी सीमावर्ती चौकियां भी नहीं हटाईं। युद्ध में जितने भारतीय बन्दी पकड़े गए, उनको नहीं लौटाया। पाकिस्तान ने युद्ध में हस्तगत भारतीय सामग्री भी नहीं लौटाई जिसकी कीमत दो अरब के लगभग थी। देश विभाजन के बाद पाकिस्तान ने भारतीय निष्क्रान्त सम्पत्ति भी नहीं लौटाई, जब कि भारत अपनी ओर से सब बन्दी, सब सामग्री और सब सम्पत्ति लौटा चुका था।



उपकारिणि विश्रब्धे,
शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्यसंधं
भगवति वसुधे कथं वहसि ॥

अपने ऊपर उपकार करने वाले, विश्वास पात्र और दिल दिमाग से छल-शून्य व्यक्ति के साथ जो पाप का आचरण करता है, हे भगवती धरतीमाता! संधि से मुकरने वाले उस विश्वासघाती व्यक्ति का भार तू कैसे वहन करती है?

शेख के गिरगिटी रंग

किसी व्यक्ति-विशेष पर ईमान लाने का आग्रह करने वाले मतों में कट्टरता का और अन्य मतों से घृणा करने का ऐसा तत्व निहित होता है, जिसके बिना उनका अस्तित्व कठिन है। इस्लाम में यह तत्व अपने प्रखर रूप में विद्यमान है। हिन्दू संस्कृति की पृष्ठभूमि के कारण कश्मीर के इस्लाम में यह तत्व नहीं पनपने पाया। भविष्य में इसकी सम्भावना के निवारण के लिए राजनीतिक दूरदर्शिता का यह तकाजा था कि कश्मीर के भारत-विलय के पश्चात् उसका समुचित उपाय किया जाता। कश्मीर के इतिहास में

कलंकस्वरूप, स्वर्ग को नरक कुण्ड में धकेल देने वाले, मुगल और पठानों के भीषण अत्याचारों के दो सौ वर्षों के क्षेपक को निरस्त करने का भी यही कारगर उपाय होता। सरदार पटेल ने निजाम हैदराबाद, भोपाल, जूनागढ़ और मानवदार जैसी मुस्लिम रियासतों के विलय के पश्चात उनका ऐसा ही उपचार किया था। कश्मीर में भी यह सहज सम्भव था। पाकिस्तान से उजड़कर जो हिन्दू शरणार्थी आए थे, उन्हें कश्मीर में और सीमावर्ती प्रदेशों में बसाया जाता, तो कश्मीर के उक्त मुस्लिम चरित्र पर अंकुश लग सकता था। नेहरू को यह सलाह दी भी गई। पर अपने ही बनाए 'मूर्खों के स्वर्ग'' में विचरण करने वाले नेहरू को यह सलाह पसन्द नहीं आई। ३७० वें अनुच्छेद बनने पर वह रास्ता सदा के लिए बन्द हो गया।

जब सदरे रियासत युवराज कर्णसिंह का विवाह नेपाल के राणा की कन्या यशोराज्यलक्ष्मी से हुआ, तब नेहरू को फिर यह सलाह दी गई कि महारानी के साथ कुछ सौ गोरखों को उनके व्यक्तिगत परिचारकों के रूप में कश्मीर में बसा दिया जाए। रियासतों में यह आम रिवाज था। रानी बनने वाली राजकुमारी अपने साथ सैंकड़ो की संख्या में परिचारकों और परिचारिकाओं को लेकर आया करती थी। इन परिचारकों की संख्या से रानी का गौरव नापा जाता था। इस प्रकार कुछ गोरखों के कश्मीर में बसने पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती थी। पर नेहरू को यह राय भी रास नहीं आई।

कुछ लोगों को यह गलत फहमी है कि कश्मीर के लोगों के आर्थिक और सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा के लिए ३७० अनुच्छेद बनाया गया ताकि राज्य के बाहर के लोग आकर इस सुन्दर घाटी के किसानों की जमीनें खरीदकर उन्हें बेदखल न कर दें। देश के अन्य हिस्सों में भी इस प्रकार की आशंका प्रकट की जाती रही है। इसीलिए वहां ऐसे कायदे कानून बनाए गए हैं कि बाहर के लोग आसानी से जमीन न खरीद सकें। हिमाचल प्रदेश में और आदिवासी इलाकों में इस प्रकार के प्रतिबन्ध हैं। वे प्रतिबन्ध उन राज्यों की विधानसभाओं ने लगाए जिनको भारतीय संविधान के अन्तर्गत वैसे अधिकार प्राप्त हैं। परन्तु कश्मीर को छोड़ कर और कहीं भी ३७० जैसा कोई अनुच्छेद नहीं है। वस्तुतः इस अनुच्छेद ने नागरिकता के दोहरे

मानदण्ड बना दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि पंजाब के जो शरणार्थी जम्मू-कश्मीर में गत ४२ वर्षों से रह रहे हैं, वे वहां के नागरिक नहीं हैं, उन्हें चुनावों में खड़े होने का तो क्या वोट देने तक का अधिकार नहीं है। कोई कश्मीरी सारे भारत में कहीं भी जमीन खरीदकर अपना मकान बना कर रह सकता है, वहां का नागरिक बन कर नागरिकता के सब अधिकार प्राप्त कर सकता है, पर समग्र भारत का कोई भी व्यक्ति कश्मीर में नहीं बस सकता। और तो और, कश्मीर को शेष सारे भारत से अलग थलग रखने के लिए केन्द्र की ओर से पासपोर्ट जारी किए जाते थे, जिसके बिना कोई भारतवासी कश्मीर में प्रवेश नहीं कर सकता था। यह कश्मीर भारत का कैसा विचित्र अविछिन्न अंग था! ३७० अनुच्छेद बनाने वालों की बुद्धि की बलिहारी।

इधर शेख अब्दुल्ला ने सत्ता संभालते ही पाक-अधिकृत कश्मीर में गए मुसलमानों को वापिस बुलाकर पुनः कश्मीर में बसाना शुरू किया। ये मुसलमान मूलतः कश्मीरी नहीं थे और उन्हीं मुगलों और पठानों क़ी औलाद थे जिनके अत्याचारों से कश्मीर लगातार दो सौ साल तक कराहता रहा। हत्या और लूटमार इन मुसलमानों का पुश्तैनी पेशा है। इन मुसलमानों के साथ कितने भावी आतंकवादी भी कश्मीर की घाटी में आकर जम गए, यह कौन जाने।

कहावत है — *प्रभुता पाई जेहि मद नाहीं। ते नरवर थोड़े जग माहीं।* शेख उन थोड़े नरवरों में नहीं थे। उनको भी सत्ता के मद ने घेर लिया और उनके मन में छिपा साम्प्रदायिकता का चोर खुलकर खेलने लगा। वे धर्मनिरपेक्षता की आड़ में कश्मीर को मुसलमानी राज्य बनाने में लग गए। उन्होंने हिन्दू-बहुमत वाले जिलों को तोड़ दिया। संस्कृत शोध विभाग बन्द कर दिया। उर्दू को सबके लिए अनिवार्य कर दिया। सारे भारत में एकमात्र जम्मू-कश्मीर ही ऐसा राज्य है जिसकी सरकारी भाषा डोगरी, कश्मीरी या लद्दाखी जैसी कोई स्थानीय भाषा न होकर केवल उर्दू है। मन्दिरों और संस्कृत पाठशालाओं को चलाने के लिए जो धमर्थि न्यास बने हुए थे उन्हें खत्म करके उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली। राज्य के सब महत्वपूर्ण स्थानों

पर केवल मुसलमानों को नियुक्त किया। टैकनिकल या मेडिकल कालेजों में मुस्लिम छात्रों को तरजीह दी गई। हिन्दुओं और सिखों के पुनर्वास का विरोध किया गया। जो पाकिस्तान के समर्थक थे उन्हें जेलों से रिहा कर पाकिस्तान जाने की सुविधा दी गई, गैर मुसलमानों को व्यापारिक और आर्थिक दृष्टि से पंगु बनाने के लिए यातायात का राष्ट्रीयकरण कर दिया। भूमि सुधार के नाम से हिन्दुओं की जमीनें छीन लीं और आर्थिक सुधार के नाम पर ऐसे सुधार किए जिनसे केवल हिन्दू ही दुष्प्रभावित हुए। पंजाब से जो हिन्दू शरणार्थी कश्मीर गए थे, वे समस्त भारत में शरणार्थियों का पुनर्वास हो जाने के बाद भी खानाबदोशों की ही जिन्दगी जीते हैं। सन् १९९० के आते आते मूल निवासी कश्मीरी हिन्दू भी इस भेदभाव के कारण शरणार्थी बनने को बाध्य हुए और उन्हें घाटी छोड़ कर पलायन करना पड़ा। क्या हिन्दुओं के भाग्य में यही जिल्लत की जिन्दगी बदा है!

शेख अब्दुल्ला अपने जीवन में किस तरह गिरगिट की तरह रंग बदलते रहे, यह भी देखने योग्य है। सन १९०५ में श्रीनगर के पास एक गांव में जन्मे, शाल बुनने वाले पिता की सन्तान शेख अब्दुल्ला जन्म से पहले ही अपने पिता को खो बैठे। बड़े भाइयों और विधवा माँ ने लालन-पालन किया। श्रीनगर के प्रताप कॉलेज में इण्टर करने के बाद लाहौर के इस्लामिया कालेज से बी॰एससी॰ किया। फिर अलीगढ़ विश्वविद्यालय से एम॰एससी॰ की परीक्षा सन् १९३० में पास की और श्रीनगर गवर्नमेन्ट हाईस्कूल में साइंस के अध्यापक नियुक्त हो गए। कश्मीर-नरेश ने सिविल सर्विस में भर्ती के लिए जो कमेटी बनाई थी उसके द्वारा सिलेक्शन के आधार पर अधिक सुशिक्षित तथा योग्य होने के कारण अधिकतर हिन्दू ही राज्यसेवा में नियुक्त हो पाते थे। शेख अब्दुल्ला को यह बात नागवार गुजरी। टीचरी से इस्तीफा दिया और सरकार की उस नीति के विरुद्ध आन्दोलन का बीड़ा उठाया। भाषण-कला में माहिर थे। मस्जिदों में साम्प्रदायिकता से भरे भाषण देने लगे। जब शेख अब्दुल्ला बुलन्द आवाज में कुरान की आयतें पढ़ते तो गरीब अनपढ़ कश्मीरी मुसलमान भावाभिभूत हो जाते।

एक यूरोपियन यात्री के अब्दुल कादिर नामक बावर्ची ने २१ जून सन् १९३१ को रियासत की सरकार के विरुद्ध भाषण दिया। वह गिरफ्तार कर लिया गया। श्रीनगर जेल में उसके मुकदमे की सुनवाई हो रही थी। शेख के भड़काने से ४-५ हजार लोगों ने जेल के बाहर जमा होकर फाटक पर हमला कर दिया। भीड़ कादिर को छोड़ने की मांग कर रही थी। कैदी भी उत्तेजित हो गए। तब पुलिस को गोली चलानी पड़ी जिससे २१ आदमी मारे गए। उनकी लाशों को लेकर जलूस निकाला गया। आज तक उनका शहीद दिवस मनाया जाता है। साम्प्रदायिक तनाव बढ़ गया। हिन्दुओं की दुकानें लूटी गईं और कुछ हिन्दू मारे भी गए। तभी से कश्मीर के हिन्दू और मुसलमानों में कटुता आनी शुरू हुई जिसका पहले अभाव था। कश्मीर नरेश ने गोलीकांड की जांच के लिए राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई। पर मुसलमानों ने इसका बहिष्कार कर दिया। तब भारत के वायसराय ने महाराजा को सलाह दी कि वे किसी अंग्रेज अधिकारी से निष्पक्ष जांच करवाएं। तभी महाराजा ने हरिकृष्ण कौल को नया प्रधानमंत्री बनाया। उसने मुस्लिम प्रतिनिधियों से बात की जिसमें यह समझौता हुआ कि मुसलमान अपना आन्दोलन वापिस ले लेंगे और सरकार सब राजनीतिक बन्दियों को छोड़ देगी। मुस्लिम कान्फ्रेंस को यह समझौता पसन्द नहीं आया। उस समझौते को तोड़ने के लिए जो आन्दोलन चला उसमें शेख अब्दुल्ला ने सब से बढ़ कर भाग लिया। शेख अब्दुल्ला गिरफ्तार कर लिये गए।

कश्मीर से बाहर की मुस्लिम संस्थाओं ने आन्दोलन जारी रखने के लिए अपने जत्थे भेजने शुरू किए। मीरपुर में साम्प्रदायिक दंगा हो गया। हिन्दुओं की अधिक आबादी होने पर भी वे ही लुटे और पिटे।

शेख के रंग बदलने की यह कहानी लम्बी है।



ज्वलितं न हिरण्यरेतसं, चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।
अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः॥

— भारवि

राख के ढेर को हरेक लांघ जाता है, परन्तु स्वर्ण की दीप्ति से जलती हुई आग को लांघने की हिम्मत कोई नहीं करता। इसीलिए मनस्वी लोग तिरस्कार की आशंका से अपने प्राण भले ही आराम से छोड़ दें, परन्तु अपने स्वाभिमान को नहीं छोड़ते।

मुखर्जी का बलिदान

शेख अब्दुल्ला गिरगिट की तरह कैसे रंग बदलते जा रहे-थे, इसकी चर्चा कर रहे थे। सन् १९३२ में उन्होंने ही मुस्लिम कान्फ्रेंस स्थापित की थी, जिसका आधार विशुद्ध साम्प्रदायिक था। पर जब उन्हें लगा कि इससे उनकी महत्वाकांक्षा पूरी होने वाली नहीं तब उन्होंने सन् १९३९ में अखिल भारतीय जम्मू कश्मीर कान्फ्रेंन्स की स्थापना की जिसका उद्देश्य कश्मीरियों के लिए, फिर उनका धर्म या जाति कुछ भी क्यों न हो, उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था। इस कान्फ्रेंस में हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल

किए गए। इस आन्दोलन पर भारत की रियासतों में चलने वाले प्रजा परिषद के उत्तरदायी सरकार की मांग वाले आन्दोलन का असर भी था। व्यापक आधार से यह संस्था लोकप्रिय भी होती गई। परन्तु मुस्लिम कान्फ्रेंस अपने साम्प्रदायिक आधार को बदलने को तैयार नहीं थी— वह जिन्ना से प्रेरणा लेती थी। इस तरह कश्मीर में दो राजनीतिक संस्थाएं हो गईं—एक मुस्लिम कान्फ्रेंस और दूसरी नेशनल कान्फ्रेंस।

जब भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन चलाया तो शेख ने उसका समर्थन किया। उन्हीं दिनों शेख कांग्रेसी नेताओं के सम्पर्क में आए। सन् १९४१ में नेहरू कश्मीर गए। वहां उनका भारी स्वागत हुआ। उन्होंने कश्मीर में उत्तरदायी शासन की मांग का समर्थन किया जिससे वे कश्मीरियों के प्रिय बन गए। अन्त में सन् १९४६ में शेख अब्दुल्ला ने 'कश्मीर छोड़ो' का आन्दोलन चलाया, तो नेशनल कान्फ्रेंस के अन्य नेताओं के साथ शेख भी गिरफ्तार हो गए। नेहरू भी कश्मीर भागे भागे गए। महाराजा ने उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया। इससे भारत की बेचैनी बढ़ी। जिन्ना ने 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन का विरोध किया था। बाद में नेहरू और अब्दुल्ला दोनों छोड़ दिए गए। नेहरू वापिस दिल्ली आ गए। तभी से नेहरू मन में दो गांठें बांधे रहे — महाराज से घृणा की और शेख से प्रेम की। अगली घटनाएं नेहरू की इन्हीं दोनों मनोग्रन्थियों के प्रकाश में ही समझी जा सकती हैं।

सत्तासीन होने के पश्चात् सन् १९५० तक शेख अब्दुल्ला भारतीय रंग में रंगे रहे और यही कहते रहे कि भारत और कश्मीर का बन्धन केवल कानूनी नहीं, हृदय और आत्मा का बन्धन है। सन् १९५२ तक वे यह भी कहते रहे कि भारत में कश्मीर का अधिमिलन अन्तिम है। भारत के अनेक नगरों में उन्होंने इसी प्रकार के भाषण दिए और एक तरह से वे अखिल भारतीय नेतृत्व के मंच पर एक सोपान ऊपर चढ़ गए। उस समय तक कश्मीर के स्विट्जरलैण्ड की तरह स्वतंत्र रहने की बात उनकी जबान पर कहीं नहीं थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था, "कश्मीर के स्वतंत्र रहने से कश्मीर की समस्या हल नहीं होगी। कश्मीर की सीमाएं अनेक देशों से मिलती हैं। वह

अपनी सार्वभौमता की रक्षा नहीं कर सकता। १५ अगस्त सन् १९४७ से २२ अक्टूबर १९४७ तक कश्मीर स्वतंत्र रहा। पर परिणाम—एक पड़ोसी देश ने उसकी कमजोरी का लाभ उठाते हुए उस पर हमला कर दिया। कश्मीर स्वतंत्र रहेगा और उस पर कोई हमला नहीं करेगा, इसकी गारण्टी कौन देगा?"

पर सन् १९५३ में शेख ने नया रंग दिखाना शुरू किया। उनकी पुरानी साम्प्रदायिकता फिर उभर आई। ऐश-आराम और विलासिता के मद ने उनकी आंखों पर पर्दा डाल दिया। सरकारी कर्मचारियों में बढ़ते भ्रष्टाचार के विरुद्ध कार्रवाई करने की उनकी कोई इच्छा नहीं रही। वे अपने सजातीय अधिकारियों के अवगुणों की अनदेखी करने लगे। फिर मस्जिदों में जाकर उन्होंने साम्प्रदायिक भाषण देने प्रारम्भ कर दिए। (साम्प्रदायिकता के दैत्य के नग्न नृत्य को प्रोत्साहन देने में कश्मीर की मस्जिदों का सबसे बड़ा स्थान रहा है।) साम्प्रदायिक तनाव बढ़ता गया जिसके फलस्वरूप जम्मू में दंगा हो गया। विदेशी कूटनीतिज्ञ भी इस अवसर का लाभ उठाने लगे। जहां उन्होंने शेख को कई प्रकार के प्रलोभन दिए, वहां कश्मीर में विदेशी सुन्दर महिलाएं पर्यटकों और अखबारों की संवाददाताओं के रूप में गुप्तचर बन कर आने लगीं। शेख को विदेशों से काफी पैसा मिलने की भी अफवाहें थीं। वे पश्चिमी राष्ट्रों के सहयोग से सर्वतंत्र स्वतंत्र कश्मीर की स्थापना का और स्वयं उसका सुलतान बनने का स्वप्न देखने लगे।

शेख के इस नए रंग को देश की एकता और अखण्डता के लिए खतरा समझते हुए आधे से अधिक मंत्रियों ने अपने हस्ताक्षरों से सदरे रियासत युवराज कर्णसिंह को चिट्ठी लिखी और शेख को भी पत्र लिखकर उनकी राष्ट्रविरोधी हरकतों के लिए आगाह किया। सदरे रियासत ने अपने निवास स्थान पर मंत्रिमण्डल की बैठक बुलाई। शेख उसमें नहीं गए। शेख को बातचीत के लिए नेहरू ने दिल्ली बुलाया। शेख वहां भी नहीं गए। सदरे रियासत ने उन्हें प्रधानमंत्री पद से बर्खास्त कर दिया। मिर्जा अफजल बेग के साथ शेख गुलमर्ग चले गए। वहां से कुछ ही दूर युद्धविराम रेखा को पार कर वे पाक-अधिकृत कश्मीर की सीमा में घुसने की फिराक में थे कि

९ अगस्त १९५३ को गिरफ्तार कर लिए गए। यदि रफी अहमद किदवई और मौ. अबुलक़लाम आजाद ने जोर न दिया होता तो नेहरू अपने मित्र को गिरफ्तार नहीं होने देते। बख्शी गुलाम मुहम्मद को नया वजीरे आजम बनाया गया। (जरा राज्यपाल के बजाय 'सदरे रियासत' और मुख्यमंत्री के बजाय 'वजीरे आजाम' के विशेषणों पर भी ध्यान दीजिए कि वे कश्मीर के अलगाव के सूचक हैं या नहीं।)

पर शृगाल की तरह पलायन करते 'शेरे कश्मीर' की गिरफ्तारी से पहले एक और महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख आवश्यक है।

शेख के सबल सहयोगी अफजल बेग के पाकिस्तानी नेताओं को लिखे कुछ पत्र प्रजापरिषद के हाथ लगे। वे पत्र उन्होंने श्यामाप्रसाद मुखर्जी को भेजे। प्रजापरिषद के जानकार सूत्रों का कहना है कि उन्होंने कुछ पत्र नेहरू को भी दिखाए। पर नेहरू ने उन पर यकीन नहीं किया। आखिर शेख से बीस बरस पुरानी मित्रता जो थी। नेहरू बिना शेख से बात किए अपनी कोई धारणा बनाने को तैयार नहीं थे।

इसी बीच प्रजापरिषद ने शेख के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन शुरू कर दिया। श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने शेख और नेहरू दोनों से पत्र व्यवहार करके इस आन्दोलन की सम्मान-जनक निष्पत्ति का प्रयत्न किया। पर कोई फल न निकला। तब मुखर्जी ने परिस्थिति के प्रत्यक्ष निरीक्षण के लिए स्वयं कश्मीर जाने की अपनी इच्छा से शेख को अवगत कराया। शेख उनसे बातचीत को राजी नहीं हुए। तब श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने निश्चय किया कि कश्मीर भारत का अंग है, इसलिए मैं बिना प्रवेशपत्र के कश्मीर में प्रवेश करूंगा। कश्मीर का अपना कोई परमिट नहीं था, वह भारत सरकार द्वारा ही दिया जाता था। श्यामाप्रसाद मुखर्जी बिना परमिट के 11 मई 1953 को जम्मू-कश्मीर में प्रविष्ट हुए, कोई बाधा नहीं पहुंचाई गई। पर माधोपुर के पास रावी का पुल पार करते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

भारत या कश्मीर का ऐसा कौन सा कानून था जिसके अर्न्तगत उन्हें गिरफ्तार किया गया, यह किसी की समझ में नहीं आया। सिर्फ उन्हें दो महीने के लिए नजरबन्द किया गया — न कोई अभियोग, न कोई वकील,

न कोई दलील, न कोई अपील। यह एक नए ढंग का निर्णय था। पर हां, उन दो महीनों में नेहरू बहुत व्यस्त रहने वाले थे क्योंकि उन्हें एलिजाबेथ के राज्याभिषेक और यूरोप के भ्रमणार्थ जाना था। इससे लगता है कि यह गिरफ्तारी केन्द्र और कश्मीर दोनों सरकारों की साजिश का ही नतीजा थी।

पर नेहरू बेचैन थे। स्वयं कश्मीर गए। इस वार शेख का रूख एकदम बदला हुआ था। श्रीनगर में भी नेहरू का कोई स्वागत नहीं हुआ। शेख और उनके मंत्रियों में मनमुटाव बढ़ता रहा और शेख जगह जगह हिन्दू-विरोधी और भारत-विरोधी भाषण देते रहे।

अकस्मात् अपनी गिरफ्तारी के एक महीने ग्यारह दिन बाद 22 जून सन 1953 की आधीरात को श्यामप्रसाद मुखर्जी की मृत्यु हो गई। सारे भारत में यह प्रश्न उठा कि क्या यह मृत्यु स्वाभाविक थी? सारा बंगाल विकल हो उठा। बंगाल के राज्यपाल डा० हरेन्द्र मुखोपाध्याय ने कहा कि श्यामाप्रसाद को कहीं से भी साम्प्रदायिकता नहीं छू गई थी। जनाब फजलुल हक ने कहा कि इतना उदार और राष्ट्रनिष्ठ व्यक्ति मैंने नहीं देखा। तभी खबर आई कि श्यामाप्रसाद मुखर्जी की डायरी पुलिस के हाथ लगी है, पर वह वापिस नहीं की जाएगी। (सन् 1965 में लाल बहादुर शास्त्री की डायरी भी गायब कर दी गई थी।)

यूरोप यात्रा से लौटना पड़ा नेहरू को। श्यामाप्रसाद मुखर्जी की जननी योगमाया देवी को सान्त्वना देने नेहरू कलकत्ता पहुंचे। मगर बंगाल के नर-शार्दूल स्वर्गीय सर आशुतोष मुखर्जी की सहधर्मिणी ने उन सान्त्वना वचनों से सन्तोष नहीं किया। उन्होंने सीधा नेहरू सरकार और शेख सरकार पर आरोप लगाया और इस आकस्मिक मृत्यु की निष्पक्ष जांच की मांग की। परन्तु जिस नेहरू ने श्यामाप्रसाद मुखर्जी जैसे महान नेता की मृत्यु का समाचार रेडियो से प्रसारित नहीं होने दिया, वह निष्पक्ष जांच की हिम्मत कैसे कर सकता था। इतने दिनों में भारत के सभी राजनीतिक दलों के मन में शेख अब्दुल्ला के प्रति गहरा सन्देह उत्पन्न हो गया था। संसार को भी यह पता लग गया कि संसार के सबसे बड़े लोकतंत्र का सर्वोच्च प्रतिनिधि अपने विरोधियों के लिए कितना निर्मम और संवेदन-शून्य हो सकता है,

यह भी कि भारत जैसे संस्कृति-सम्पन्न और 'सत्यमेव जयते' के उपासक राष्ट्र में एक सत्यवादी, न्यायनिष्ठ, निर्भीक, देशभक्त का मूल्यवान जीवन भी सुरक्षित नहीं है। किसी और देश में ऐसी घटना होती तो नेहरू और शेख दोनों को उस देश की जनता पदत्याग के लिए बाधित किए बिना नहीं छोड़ती।

राष्ट्र की एकता के लिए जिस एक विधान, एक प्रधान और एक निशान का नारा लेकर श्यामाप्रसाद मुखर्जी कश्मीर गए थे, वह नारा तो अभी तक चरितार्थ नहीं हुआ, पर उनकी मृत्यु के बाद से कश्मीर-प्रवेश के लिए पारपत्र की व्यवस्था समाप्त हो गई। सबसे बड़ी बात यह हुई कि श्यामाप्रसाद मुखर्जी 370 वें अनुच्छेद के मृत्युपत्र पर अपनी मृत्यु की काली स्याही से स्वयं हस्ताक्षर कर गए। उनके अकाल काल-कवलित होने का कलंक-टीका केवल नेहरू और शेख के मस्तक पर नहीं, उन सभी राजनीतिक नेताओं के मस्तक पर भी है जो आज भी 370 अनुच्छेद को जारी रखने का समर्थन करते हैं। क्या इस कलंक-कालिमा से यह विशाल हिन्दू समाज भी कभी मुक्त हो पाएगा जिसने इतनी सहजता से इस षड्यंत्र-जन्य मृत्यु को अनासक्त भाव से स्वीकार कर लिया?



जिह्वैकैव सतामुभे फणवतां स्रष्टुश्चतस्रश्च ताः
ताः सप्तैव विभावसो र्नियमिताः षट् कार्तिकेयस्य च।
पौलस्त्यस्य दशाभवन् फणिपते र्जिह्वा सहस्रद्वयं
जिह्वा लक्षशतैककोटि नियमो नो दुर्जनानां मुखे॥

सज्जनों की सदा एक ही ज़बान होती है। साँपों की दो, ब्रह्मा जी की चार (चार मुख होने के कारण), अग्नि की सात, षण्मुख कार्तिकेय की छह (छह मुख होने के कारण), रावण की दस (दस मुख होने के कारण) और शेषनाग की दो हजार जिह्वाएं मानी जाती हैं। पर असत्यवादी दुर्जनों के मुंह में कितनी ज़बानें होती हैं, इसका कोई हिसाब नहीं है।

झूठों का चैम्पियन

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत ने अपना आदर्श वाक्य चुना— "**सत्यमेव जयते**" तो भारत-विरोध की घुट्टी पीकर पलने वाला पाकिस्तान सहज ही अपने मन में अपना आदर्श वाक्य बना बैठा—"**असत्यमेव जयते**"। तब से पाकिस्तान आज तक इसी आदर्श का ईमानदारी से पालन करता आ रहा है। चाहे तो आप पाकिस्तान के लिए कह सकते हैं—

एकै धर्म एक व्रत नेमा।
काय वचन मन असत्य प्रेमा॥

जनरल जिया की सुविचारित योजना के अनुसार जब आपरेशन टोपेक के बाद पाकिस्तान ने आतंकवादियों को अपने यहां स्थापित शिविरों में प्रशिक्षण देकर शस्त्रास्त्रों समेत कश्मीर में गड़बड़ी फैलाने के लिए चोरी छिपे भेजना शुरू किया और सीमा सुरक्षा बल द्वारा पकड़े गए आतंकवादियों के बयानों के आधार पर भारत ने उन शिविरों का पूरा विवरण पाकिस्तान को भेजा, तो उसने अपने यहां ऐसे शिविरों के अस्तित्व से सर्वथा इन्कार कर दिया। ऐसा सफेद झूठ पाकिस्तान के सिवाय और कौन बोल सकता है। पाकिस्तान के लिए यह कोई अनहोनी बात नहीं थी।

जब सन् १९४७ में कबायली हमलावरों को हथियार देकर उसने अवैध ढंग से कश्मीर में घुसाया था तब भी उसने संयुक्तराष्ट्रीय सुरक्षा परिषद में यही कहा कि इस में पाकिस्तान का कोई हाथ नहीं है, कश्मीर में यदि कोई गड़बड़ हो रही है तो यह रियासत की जनता के आन्तरिक विद्रोह का ही परिणाम है।

परन्तु झूठ के पांव कहाँ होते हैं। आन्तरिक विद्रोह का यह झूठ भी कायम नहीं रह सका। लन्दन के "टाइम्स" अखबार के संवाददाता ने, जिसे किसी भी हालत में पाकिस्तान के साथ अमैत्रीपूर्ण बर्ताव करने वाला नहीं कहा जा सकता, १३ जनवरी १९४८ को खबर दी- "यह निश्चित है कि पाकिस्तान गैर-सरकारी ढंग से हमलावरों की सहायता करने में लिप्त है। यह संवाददाता प्रत्यक्ष साक्षी है, उसने अपनी आंखों से देखा है कि हथियार, विस्फोटक द्रव्य, तथा अन्य सामग्री आजाद कश्मीर के सैनिकों को मुहैया की जा रही है। कुछ पाकिस्तानी अफसर भी हमले की कार्रवाई का निर्देशन कर रहे हैं.... चाहे पाकिस्तान सरकार इस दखलन्दाजी से कितना ही इन्कार करे, परन्तु उसकी ओर से सब प्रकार की सहायता दी जा रही है, यह पक्की बात है।"

'न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता राबर्ट ट्रम्बुल ने अपनी पुस्तक 'ऐज आई सी इन इंडिया' में कहा- "कश्मीर पर हमले के दौरान हमलावरों की किसी भी प्रकार की सहायता करने से पाकिस्तान सरकार ने जोरदार शब्दों में इन्कार किया है... पर इस बात में किसी को सन्देह नहीं है कि पाकिस्तान

के प्रान्तीय अधिकारी केन्द्रीय सरकार की पूरी जानकारी के साथ रक्त-पिपासु दस्युओं को परिवहन के लिए ट्रक मुहैया कर रहे हैं, वे हमलावरों की टुकड़ियों का निर्देशन कर रहे हैं।"

उसके बाद जनवरी १९४८ में पाकिस्तान ने फिर भारत के इस आरोप से इन्कार किया कि पाकिस्तानी सेना की दो बटालियनें कश्मीर में लड़ रही हैं। यद्यपि कश्मीर के अनेक भागों में भारतीय सेना के साथ पाकिस्तानी सैनिकों की मुठभेड़ हो रही थी, और सब यह जानते थे, परन्तु पाकिस्तान इससे लगातार इन्कार करता रहा। लार्ड बर्डवुड ने अपनी 'कैण्टिनेंट डिसाइड्स' नामक पुस्तक में लिखा—"रावलपिण्डी के मुख्यालय में जब वे इस विषय पर बात करने को तैयार हुए तब मुझे विश्वास दिलाया गया कि मई से पहले एक भी नियमित टुकड़ी कश्मीर नहीं भेजी गई। परन्तु १ मार्च को पुँछ के विफल हमले में पैदल सेना की टुकड़ी के संरक्षण में पहाड़ी तोप-खाना कार्रवाई कर रहा था। भारत में जितने भी अंग्रेज सैन्य अधिकारी थे उनका भी यह पक्का विश्वास था कि पाकिस्तानी सैनिक जनवरी से ही लड़ाई में शामिल हैं।"

ये प्रमाण तो हमने विदेशी संवाददाताओं के दिए। अब स्वयं पाकिस्तान के विदेश मंत्री का प्रमाण लीजिए। कहीं जुलाई में आकर पाक विदेशमंत्री जफरुल्ला खाँ ने सुरक्षा परिषद में यह स्वीकार किया कि पाकिस्तान के सैनिक मई १९४८ से कश्मीर में लड़ रहे हैं। परंतु, इतने दिनों बाद भी जफरुल्ला ने पूरी सच बात नहीं कही। जब १३ अगस्त, १९४८ को सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव के अनुसार पाकिस्तान ने कश्मीर से अपने सैनिक हटाने पर रजामन्दी प्रकट की, तब कहीं उसका यह दूसरा झूठ पकड़ा गया। सुरक्षा परिषद द्वारा नियुक्त आयोग ने कश्मीर और पाकिस्तान जाकर स्वयं स्थिति का निरीक्षण करने का निश्चय किया। आयोग पहले पाकिस्तान गया। पाकिस्तान ने देखा कि अब तो झूठ पकड़ा ही जाएगा। तब उसके विदेशमंत्री ने आयोग के समक्ष स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि पाकिस्तान की तीन बटालियनें कश्मीर में लड़ रही है। तुलसीदास ने लिखा है न—

उघरे अन्त न होहि निबाहू।
कालनेमि जिमि रावण राहू॥

जिस तरह जन्मजात चोर चोरी करने की आदत से बाज नहीं आ सकता, वैसे ही जन्मजात झूठ बोलने का अभ्यासी भी झूठ बोलने से बाज नहीं आ सकता

तीसरी बार फिर पाकिस्तान ने अपनी करामात दिखाई। अयूब खां के शासन काल में जब सन् १९६५ में ५ अगस्त को नागरिकों के वेश में घुसपैठिए अपने लबादों के नीचे बम और अन्य घातक हथियार छिपाए भारी संख्या में कश्मीर में घुस आए और बाद में एक सितम्बर, १९६५ को पाकिस्तान की सशस्त्र सेना बख्तरबन्द ब्रिगेड के साथ विमानों की सहायता की छाया में अन्तर्राष्ट्रीय युद्धविराम रेखा को पार कर आई, उस समय जो आगजनी, लूटमार और हत्याएं इन घुसपैठियों द्वारा की गईं उन सबके लिए पाकिस्तान ने यही कहा कि यह तो कश्मीर की जनता के आन्तरिक विद्रोह का परिणाम है। सुरक्षा परिषद् के सामने भी पाकिस्तान इस बात पर अड़ा रहा, जबकि संयुक्त राष्ट्रीय सैन्य प्रेक्षक दल और अन्य स्वतंत्र प्रेक्षकों की रपट यह साफ बता रही थी कि भारी संख्या में सशस्त्र सैनिकों ने अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पार कर कश्मीर में प्रवेश किया है। आश्चर्य इस बात का है कि फिर भी सुरक्षा परिषद पाकिस्तान के बहकाने में आती रही। जब सुरक्षा परिषद के सदस्यों ने आपसी विचार-विनिमय के बाद ६ सितम्बर, १९६५ को अपना वह प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसमें भारत और पाकिस्तान दोनों की सेनाओं से अपनी पूर्वस्थिति पर लौट जाने की बात कही गई थी, तब उसने पाकिस्तानी घुसपैठ की सर्वथा उपेक्षा कर दी।

चोर और साहूकार को एक ही पलड़े पर रखने वाले इस प्रस्ताव का उसे सर्वथा एकपक्षीय और अनुचित बताकर भारत ने जबर्दस्त विरोध किया और उसने स्पष्ट कर दिया कि यदि सुरक्षा परिषद ने यह प्रस्ताव पारित किया तो वह सुरक्षा परिषद से हट जाएगा। उस समय सोवियत संघ ने भारत के रुख का समर्थन किया। तब सुरक्षा परिषद ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि दोनों देशों की सेनाएं ५ अगस्त से पहले की स्थिति तक तुरन्त वापिस लौट जाएं। इसका अर्थ यह था कि सुरक्षा परिषद ने भारत का यह आरोप स्वीकार कर लिया कि ५ अगस्त से पाकिस्तान ने कश्मीर में घुसपैठ प्रारम्भ की थी।

इन प्रमाणों के अलावा यहां हम उन प्रमाणों का भी उल्लेख करना चाहते हैं जो सुरक्षा परिषद में जफरुल्ला खां के अनर्गल आरोपों का जवाब देते हुए स्वयं शेख अब्दुल्ला ने प्रस्तुत किए थे।

(१) पाक-हमलावरों के पास जिस प्रकार के हथगोले, स्टेनगनें, और टैंक-तोड़क राइफलें मिलीं वे केवल सेना के पास ही हो सकती थीं, (२) हमलावरों की जो गाड़ियाँ भारतीय सेना के द्वारा पकड़ी गईं उन पर पाकिस्तान की नम्बर प्लेटें लगी थीं। (३) स्वयं पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने और सिन्ध के शिक्षामंत्री ने पाकिस्तानी जनता से हमलावरों की सब तरह से सहायता करने की अपील की थी। (४) सीमा प्रान्त के मुख्यमंत्री ने यह घोषणा की थी कि पाकिंस्तान के दुश्मनों को छोड़ कर सभी को आग्नेयास्त्र उदारतापूर्वक बांटे जाएंगे। (५) सीमाप्रान्त के गवर्नर सर जार्ज कंनिंघम ने भारत के प्रधान सेनापति जनरल लोकहार्ट को सूचना दी थी कि प्रान्त के मंत्रीगण कबायलियों को सब प्रकार की सहायता दे रहे हैं। (६) जनरल लोकहार्ट ने पाकिस्तान के सैनिक मुख्यालय से प्राप्त एक तार माउंटबेटन की अध्यक्षता में हुई प्रतिरक्षा समिति की बैठक में पढ़ कर सुनाया था जिसमें कहा गया था कि ५००० हमलावरों ने कश्मीर पर हमला करके मुजफ्फराबाद और दोमेल पर कब्जा कर लिया है। (७) पाकिस्तान सरकार की ओर से एक कश्मीर सहायता निधि स्थापित की गई थी। जब सैन्य एकाउन्ट्स कंट्रोलर ने पूर्वमंत्री ममदोत खान से उसके खर्च का हिसाब मांगा, तब ममदोत खान ने कहा था कि मैंने यह रकम किसको दी और क्यों दी, यह मैं नहीं बता सकता, क्योंकि इससे पाकिस्तान की नीति पर असर पड़ेगा। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यह धनराशि मैंने खुफिया कामों पर खर्च की, क्योंकि यह इसी लिए एकत्र की गई थी। (८) स्वयं जनरल अयूब खां ने इण्डोनेशिया की राजधानी जकार्ता में एक सम्मेलन में यह ऐलान किया था कि जम्मू-कश्मीर में मुसलमानों की सहायता के लिए पाकिस्तान रणक्षेत्र में कूदा था।

इतने प्रमाणों के बावजूद सुरक्षा परिषद ने पाकिस्तान को आक्रमणकारी मान कभी कोई कार्रवाई नहीं की। अब चौथी बार प्रशिक्षण शिविरों के

सम्बन्ध में पाकिस्तान ने फिर झूठ बोला और उनकी मौजूदगी से इन्कार किया। अभी हाल में ११ अगस्त १९९० को दिल्ली में भारत और पाकिस्तान के विदेश सचिवों की बैठक में भारत ने जब इन शिविरों को बन्द करने की मांग की और पाकिस्तान की नेकनीयती के प्रमाण स्वरूप ५ शर्तें पेश कीं, तो पाकिस्तान के विदेश सचिव ने कहा कि मैं अपनी सरकार के सामने आपकी शर्तें रख दूंगा। फिर जाते जाते संवाददाताओं के सामने यह और कह दिया कि पाकिस्तान सरकार के तो कोई प्रशिक्षण शिविर हैं नहीं, पर यदि ईरान और सऊदी अरब कोई प्रशिक्षण शिविर चला रहे हों, तो हम कुछ नहीं कह सकते।

वाह! इस मासूमियत के क्या कहने हैं! गिनीज बुक में झूठों के सिरताज के रूप में पाकिस्तान का नाम क्यों न दर्ज कर दिया जाए! इस खेल में पाकिस्तान विश्व चैम्पियन है।



कश्मीर के मीर वायज मौलवी यूसुफ शाह कश्मीर की आजादी के पक्षपाती होने के कारण आजाद कश्मीर चले गए। वहां उन्हें दो बार आजाद कश्मीर का राष्ट्रपति बनाया गया। दोनों बार धांधली से अपदस्थ कर दिया गया। उन्होंने नेहरू को पत्र लिखा—'पाकिस्तान की तानाशाही से तंग आकर मैं भारत वापस आना चाहता हूं।' इस पर उन्हें जेल में नजरबन्द कर दिया गया। इसी दुःख से उनकी मृत्यु हुई। मरने से पहले उन्होंने कहा था कि मेरा शव श्रीनगर में दफनाया जाए। पाकिस्तानी अधिकारियों ने इसकी अनुमति नहीं दी। कहा जाता है कि मौलवी साहब को विष देकर मारा गया था।

उनके सुपुत्र फारुखशाह ने मीर वायज बनने पर अपने संस्मरणों में इस्लामी हदीस के आधार पर लिख दिया— "हुब्बुल वतन मनुल ईमां"—अर्थात् वतन से मुहब्बत ईमान का अंग है। इसी बात पर कश्मीर के आतंकवादियों ने मस्जिद में घुस कर उनकी हत्या कर दी। फिर उनकी शव-यात्रा में इतना हंगामा किया कि पुलिस को गोली चलानी पड़ी। ५३ व्यक्ति मारे गए। इसी गोलीबारी के कारण जगमोहन को कश्मीर का राज्यपाल पद छोड़ना पड़ा।

कृत्रिम राष्ट्र का निर्माण

भारत-पाक वैमनस्य का बीज विभाजन से बहुत पहले ही पड़ चुका था। वह बीज पाकिस्तान के निर्माण की विचारधारा में ही निहित है। सबसे पहले चौधरी रहमत अली ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के छात्र के रूप में (नेहरू भी इसी विश्वविद्यालय के छात्र रहे थे) ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की संयुक्त प्रवर समिति के समक्ष सन् १९३३ में अपनी योजना पेश की थी। बाद में सन् ४० में 'इस्लाम की मिल्लत और भारतीयता का खतरा'(Millet of Islam and the Menace of Indianism) नामक लघु पुस्तिका लिख कर अपने विचार का

प्रचार किया था। रहमत अली का कहना था कि भारत अनेक राष्ट्रों का समूह है जिसे ब्रिटिश शासन ने कृत्रिम रूप से एक बना रखा है। वह इसे "इण्डिया" के बजाय "दीनिया" अर्थात् अनेक दीनों (मज़हबों) का देश कहता था। मुस्लिम राष्ट्र इस्लामी मज़हब को मानता है और हिन्दुओं में अनेक मज़हबों को मानने वाली अनेक कौमें या राष्ट्र हैं । रहमत अली की दृष्टि में मुस्लिम राष्ट्र तीन प्रकार के प्रदेशों से बना है—

(१) पाकिस्तान— जो अविभक्त पंजाब, अफगानिया (उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त), कश्मीर, सिन्ध और बलोचिस्तान से मिलकर बनेगा। इस प्रकार उसने प्रथम चार प्रदेशों के प्रथम अक्षर और अन्तिम प्रदेश के लिए अन्तिम भाग मिलाकर 'पाकिस्तान' शब्द घड़ा था।

(२) बंगिस्तान — जिसमें उत्तरपूर्वी भारत (अविभक्त बंगाल और मूल आसाम जिसमें नागालैण्ड, मिजोरम और अरुणाचल आदि प्रदेश शामिल हों।)

(३) ऐसे प्रदेश जिनमें मुसलमानों का बहुमत भले ही न हो, पर जिनके शासक मुसलमान हों। इस प्रदेश का नाम होगा उस्मानिस्तान जिसमें निजाम हैदराबाद द्वारा शासित प्रदेश शामिल होंगे।

रहमत अली की योजना यह थी कि इन तीन मुस्लिम-बहुल प्रदेशों के निर्माण के पश्चात् वे दीनिया के हिन्दू शासित प्रदेशों में बचे साढ़े तीन करोड़ मुसलमानों के लिए अलग राष्ट्र की मांग करेंगे। जब यह मांग पूरी हो जाएगी तो मिल्लत में सात और नए राष्ट्र जुड़ जाएंगे। यह योजना कितनी खतरनाक थी, यह इसकी रूपरेखा से ही स्पष्ट है। यह 'हिन्दू इण्डिया' को 'मुस्लिम इंडिया' बनाने की चाल थी। इस योजना से प्रभावित होकर उस्मानिस्तान का स्वप्न पूरा करने के लिए निजाम को भारत में न मिलने के लिए उकसाया गया था और पुर्तगाल के सालाजार से कहा गया था कि वह हैदराबाद को गोवा बन्दरगाह प्रयोग करने की छूट दे दे ताकि अन्य देशों से शस्त्रास्त्रों की सहायता ली जा सके। जब भारत के पुलिस ऐक्शन से वह स्वप्न चकनाचूर हो गया तो पाकिस्तान ने बाकायदा सुरक्षा परिषद में भारत के विरुद्ध शिकायत की, जो अभी तक वहां मौजूद है।

इसी तरह रहमत अली ने कच्छ और काठियावाड़ को भी सिन्ध का भाग मानकर उनकी मांग की थी। उसी से प्रेरणा लेकर पाकिस्तान ने १९६० में भारत पाक सीमा सम्मेलन बुला कर कच्छ के रण पर अपना स्वामित्व जताया था। भारत ने ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध किया कि गत एक सदी से रण कच्छ का हिस्सा है और कच्छ १९४७ में, ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा पारित भारतीय स्वाधीनता अधिनियम के अन्तर्गत भारतीय संघ का अंग बन चुका है। परन्तु पाकिस्तान ने इस सब की परवाह न करते हुए १२ मई १९६४ को वहां घुसपैठ शुरू कर दी। वे घुसपैठिए गिरफ्तार हो गए। तब २५ जनवरी १९६५ को पाकिस्तानी अर्धसैन्य बल ने हमला करके कंजरकोट और सरदार चौकी पर कब्जा कर लिया। भारत ने हमलावरों को खदेड़ दिया। तब पाकिस्तान की पूरी ब्रिगेड ने टैंकों से हमला करके बियारबे टपर कब्जा कर लिया। भारत ने उसे भी वापिस ले लिया। जब इधर दाल नहीं गली, तो पाकिस्तान ने कश्मीर की ओर दूसरा मोर्चा खोलकर जिस खतरनाक योजना पर अमल करना चाहा था, उसका उल्लेख पहले कर चुके हैं।

पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए मुस्लिम लीग के नेताओं ने कोई त्याग, या संघर्ष नहीं किया। युद्धों में हार-जीत के आधार पर देशों की सीमाएं घटती-बढ़ती और बदलती रहती हैं, पर बिना किसी युद्ध के एक सर्वथा नए देश का निर्माण एक अभूतपूर्व घटना थी—अदृष्टपूर्व और अश्रुतपूर्व भी।

जिन्ना जन्म से गुजराती थे। उनका कार्यक्षेत्र बम्बई था। इस्लाम से उनका कोई खास लेना देना नहीं था। इसी तरह नवाब लियाकत अली खां मूलतः करनाल के रहने वाले थे और उत्तर प्रदेश के बड़े जमींदार थे। पाकिस्तान में सम्मिलित होने वाले क्षेत्रों से और लोगों से इन दोनों का कोई भावनात्मक सम्बन्ध नहीं था, न ही कोई सामाजिक लगाव। पर जिन्ना पाकिस्तान के गर्वनर जनरल बने और लियाकत अली प्रधानमंत्री। "मुस्लिम हैं हम — वतन है सारा जहां हमारा" इकबाल के इस नारे ने, जिन्ना की चतुराई ने, अंग्रेजों की कूटनीति ने और कांग्रेसी नेताओं की अदूरदर्शिता ने यह इतिहास-विरुद्ध घटना हो जाने दी। इतनी आसानी से पाकिस्तान मिल जाने से मतान्ध मुस्लिम नेताओं का इतना हौसला बढ़ा कि वे कहने लगे—

"हँस के लिया है पाकिस्तान, लड़के लेंगे हिन्दुस्तान" और इसी मानसिक कलुष ने उनको कश्मीर पर हमला करने के लिए प्रेरित कर दिया। हिन्दू विरोधी जोश और जिहाद के जनून ने ही पाकिस्तान को जन्म दिया, इसलिए पाकिस्तान के नेता अपने कृत्रिम देश की एकता को बनाए रखने के लिए इस हिन्दू-विरोध को ही पनपाते रहे। कश्मीर या किसी और विवाद को भारत-पाक शत्रुता का कारण समझना सर्वथा गलत है। यह शत्रुता पाकिस्तान के जन्म का आधार है।

दूसरा हेतु पाकिस्तान निर्माण में इस्लाम की वह गलत विचारधारा है जिसमें दारुल-हरब और दारुल-इस्लाम तथा मिल्लत और कुफ्र की व्यवस्था हैं। दारुल इस्लाम का अर्थ है—इस्लामी राष्ट्र। दारुल हरब को दारुल-इस्लाम बनाना प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है। यही बात मिल्लत और कुफ्र के साथ है। जो इस्लाम के साथ हैं, वे मिल्लत में शामिल हैं, जो इस्लाम के अनुयायी नहीं है वे कुफ्र में शामिल हैं—इसलिए काफिर हैं। काफिरों को मिल्लत में शामिल करने के लिए किसी भी प्रकार के हथकण्डे अपनाना इस्लाम का आवश्यक अंग है।

तीसरा हेतु भारत में वयस्क मताधिकार के आधार पर लोकतंत्र शासन स्थापित होने पर हिन्दुओं के बहुमत के प्रभुत्व से बचने के लिए अपना एक अलग देश बनाना था जहां मुल्ला-मौलवियो के कथनानुसार इस्लामी शासन चल सके।

चौथा हेतु था भारत स्थित मुसलमानों को यह प्रलोभन कि पाकिस्तान में रहने वाले सब हिन्दुओं की जमीन जायदाद तुम्हारे हाथ लगेगी और तुम उनकी बहू-बेटियों को अपने हरम में डाल सकोगे। मुसलमानों की अर्थ और काम की बेलगाम तृष्णा की तुष्टि के लिए यह प्रलोभन भी कम कारगर नहीं था।

पाकिस्तानी नेताओं की पूर्वी पाकिस्तान में कोई रुचि नहीं थी। शुरू शुरू में पाकिस्तानी शासक अपना पांव जमाने में, सेना कश्मीर को हथियाने में और मुस्लिम जनता हिन्दुओं के जानमाल से हाथ रंगने में लगी रही। पर यह स्थिति अधिक देर नहीं रही। ऊपर पाकिस्तान-निर्माण के जिन हेतुओं

का उल्लेख किया गया है, उनको पाकिस्तान के अन्दर से ही चुनौती मिलने लगी।

जिन्ना ने अपने अहम् की पूर्ति के लिए और गान्धी तथा नेहरू को नीचा दिखाने के लिए पाकिस्तान का निर्माण किया था। वे मूलतः उदार विचारों के थे और सन् 1916 तक वे पक्के राष्ट्रवादी थे, कांग्रेस के साथ थे। पाकिस्तान बन जाने पर उन्हें द्विराष्ट्र-सिद्धान्त का खोखलापन स्पष्ट हो गया। पर सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों को और पाकिस्तान से हिन्दुओं को निकाल कर उनकी धन-सम्पत्ति पर ऐश करने वालों को यह अच्छा नहीं लगा। जिन्ना के विरुद्ध षडयंत्र शुरू हो गए। उन्हें सन् १९४८ की गर्मियों में विश्राम के लिए क्वेटा के पास जियारत नामक दुनिया से अलग-थलग एकान्त स्थान पर भेज दिया गया। उनके उपचार की कोई समुचित व्यवस्था नहीं की गई। अचानक उनके सख्त बीमार होने का समाचार फैलाया गया। उन्हें विमान से कराची लाया गया। हवाई अड्डे पर कोई मंत्री या उच्च-अधिकारी अगवानी के लिए नहीं आया। एक पुरानी मोटर गाड़ी में, जो रास्ते में खराब हो गई और काफी देर तक सड़क पर खड़ी रही, उनके निवास स्थान पर ले जाया गया। कुछ देर बाद उनकी मृत्यु की घोषणा कर दी गई। मृत्यु की जांच की मांग उठी। पर सरकार उसका मजाक उड़ाती रही।

जिन्ना की बहन कुमारी फातिमा जिन्ना को शायद सब तथ्यों की जानकारी थी। कहीं वे रहस्य खोल न दें, इसलिए जनरल अयूब खां के शासन के समय उनकी भी रहस्यपूर्ण ढंग से हत्या हो गई।

पाकिस्तान में अब जिन्ना या उसकी बहन के मजार की भी किसी को कोई परवाह नहीं है। जिन लोगों की दृष्टि में जिन्ना विदेशी थे, उनकी दृष्टि में लियाकत अली भी उतने ही विदेशी थे। उनके विरुद्ध भी षडयंत्र हुए और सन् १९५१ में एक सार्वजनिक सभा में बोलने के लिए खड़ा होने पर लियाकत अली को गोली मार दी गई। षड्यंत्र पर पर्दा डालने के लिए कातिल को भी तत्काल गोली से उड़ा दिया गया।

पाकिस्तान में कोई सर्वमान्य नेता नहीं बचा, तो उत्तराधिकार का झगड़ा शुरू हो गया। सन १९५८ में जनरल अयूब खां की तानाशाही स्थापित हो

गई। अयूब खां के पीछे अमरीकी सैनिक सहायता से सुसज्जित पाक सेना का बल था।

पाकिस्तान-निर्माण का दूसरा हेतु था इस्लाम। पाकिस्तान संविधान सभा ने यह तो घोषित कर दिया कि पाकिस्तान का राज्याध्यक्ष केवल मुसलमान ही होगा, पर इस्लामी शरियत के दकियानूसी कायदे-कानूनों के अनुसार संविधान बनाना व्यावहारिक नहीं था। यह स्पष्ट होने लगा कि लगभग दो हजार साल पुराने इस्लामी कानून के अनुसार कोई आधुनिक राज्य चलाना सम्भव नहीं है।

फिर प्रश्न उठा कि वास्तव में मुसलमान कौन है। जब तक हिन्दुओं की मार-काट और लूटपाट का मामला था, तब तक सब मुसलमान एकजुट रहे। पर जब पाकिस्तान में हिन्दू लगभग समाप्त हो गए तो उनकी अपनी धर्मान्धता और असहिष्णुता उन्हीं को खाने लगी। मुसलमानों में हिन्दू-विरोधी भावना जगाने में अहमदिया मुसलमान सबसे आगे थे। पर पाकिस्तानी मुसलमानों ने उनको मुसलमान मानने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वे हजरत मोहम्मद साहब को आखिरी पैगम्बर नहीं मानते। अहमदियों के घरबार लूटे गए, उनकी मस्जिदें तोड़ी गईं और सैंकड़ों अहमदियों को मौत के घाट उतारा गया। पाकिस्तान के सबसे अनुभवी राजनीतिज्ञ विदेशमंत्री सर जफरुल्ला खां को उनके अहमदिया होने के कारण पाकिस्तान से निकाला गया। मुसलमानों के स्वयं मुसलमानों पर इन अत्याचारों ने इस्लाम के नाम पर पाकिस्तान की एकता की पोल खोल दी। इसका अर्थ है कि गैर-मुसलमानों पर अत्याचार करने के लिए पाकिस्तानी एक हो सकते हैं, पर जब गैर मुसलमान न हों तो उनकी यह एकता कायम नहीं रह सकती।

जब पश्चिमी पाकिस्तान में हिन्दू नहीं बचे, तो पाकिस्तानी शासकों ने पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दुओं को खदेड़ने के लिए वहां हिन्दू-मुस्लिम दंगे करवाये। परन्तु पूर्वी पाकिस्तान के मुसलमानों की जैसी समानता वहां के बंगाली हिन्दुओं के साथ थी, वैसी पश्चिमी पाकिस्तान के मुसलमानों के साथ नहीं थी। फिर जब पाकिस्तान ने उन पर जबर्दस्ती उर्दू लादनी चाही, तो पश्चिमी

पाकिस्तान के प्रति उनके मन में विद्रोह की भावना भर गई। अन्ततः बंगलादेश आजाद होकर रहा।

पाकिस्तान निर्माण के जितने नकारात्मक आधार थे वे सब एक एक कर खिसकते गए, तो उसका विघटन अवश्यम्भावी था। बंगलादेश की आजादी ने पाकिस्तान के विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी।



"पाकिस्तान की जनता में विविध जातियां हैं और प्रत्येक जाति की अपनी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है। पूर्वी बंगाली, जो पाकिस्तान की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग है, सम्भवतः मूल भारतीयों से सम्बद्ध हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पाकिस्तान बनने से पहले उन्हें वास्तविक स्वतंत्रता और प्रभुता का ज्ञान नहीं था। वे बारी बारी से हिन्दू, मुगल, पठान और ब्रिटिश लोगों द्वारा शासित होते रहे। इसके अतिरिक्त वे अधिकतर हिन्दू संस्कृति और भाषा के प्रभाव में रहे हैं। इसलिए उनमें पददलित जातियों की सभी कमियां मौजूद हैं और अभी तक उनके लिए नव-प्राप्त स्वतंत्रता की अपेक्षाओं के अनुरूप मनोवैज्ञानिक रीति से अपने आपको ढालना सम्भव नहीं हो सका है।"

—जनरल अयूब खां 'फ्रेण्ड्स नॉट मास्टर्स' में

सिन्ध का गृहयुद्ध

पूर्वी पाकिस्तान के सम्बन्ध में पाकिस्तान के शासक क्या सोचते थे, यह ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है। एक राष्ट्र के रूप में पाकिस्तान के टिके रहने में शुरू से ही शंका थी। १९७१ में बंगला देश के अलग होने से पाकिस्तान के दो टुकड़े हो जाने के कारण यह शंका सही निकली। पाकिस्तान के ये दोनों टुकड़े एक दूसरे से स्थल मार्ग से १,१०० मील और समुद्री मार्ग से ३,५०० मील दूर थे। इतनी दूरी किसी उपनिवेश की तो हो सकती है, किन्तु देश के ही किसी दूसरे भाग की यह दूरी सर्वथा अस्वाभाविक है।

टूटन का एक मात्र कारण यह दूरी ही नहीं है। यदि पूर्वी पाकिस्तान पश्चिमी पाकिस्तान के साथ सटा हुआ होता, तब भी अलग होता ही। क्योंकि शुरू से ही जो विरोधाभास पाकिस्तान के निर्माण में थे उनका यह अवश्यम्भावी परिणाम था।

पाकिस्तान के एक राष्ट्र होने का औचित्य अब पुनः शंकास्पद हो उठा है। कारण, पाकिस्तान बनाने वाले तीन तरह के लोग थे। एक तो वे जो ईमानदारी से मानते थे कि भारत जैसे हिन्दू-बहुल देश में इस्लामी शरियत के अनुसार जीवन-यापन सम्भव नहीं। जमाते इस्लामी सही तौर से इस्लामी राज्य की स्थापना के लिए ही लड़ रही थी। दूसरा वर्ग उत्तर प्रदेश के बड़े जमींदारों, नवाबों और अमीर खानदानों का था। तीसरे वर्ग में भारत के अंग्रेजी पढ़े-लिखे मुस्लिम नौकरशाह सम्मिलित थे। इस वर्ग के प्रभावशाली नेता थे मुहम्मद अली जिन्ना। जब सचमुच पाकिस्तान बना, तो तीसरे वर्ग वाली मुस्लिम लीग पार्टी ही हावी हो गई। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि जिन्ना के समय ही शासन निहितस्वार्थों और नौकरशाहों के हाथों में चला गया।

यह सत्ता फौजी ताकत के बिना नहीं चल सकती थी। फौज में सबसे बड़ा हिस्सा पंजाबी मुसलमानों का था। सेना से बचे बाकी मुसलमान खेती और जमीनों के मालिक थे। भारत से जो मुसलमान गए थे वे अपने आपको शासकों का वारिस समझते थे। पढ़े-लिखे होने के कारण नौकरशाही पर वे काबिज हो गए।

पाकिस्तान एक स्वप्नलोक था। पर उक्त तीनों वर्गों के सपने अलग अलग थे। जमाते इस्लामी जैसे गुट इस्लामी राज्य का सपना देखते थे। मुस्लिम लीग सत्ता की भूखी थी। १९वीं शताब्दी का अलीगढ़ी संस्करण मुहाजिर नौकरशाही की मार्फत् शासन अपनी मर्जी से चलाना चाहते थे। पख्तूनों से किसी ने पूछा ही नहीं कि तुम पाकिस्तान चाहते भी हो या नहीं। इसलिए प्रमुख पख्तून नेता, सरहदी गान्धी के नाम से विख्यात, खान अब्दुल्ला गफार खां यही कहते रहे कि हमारे साथ कांग्रेस ने छल किया है— जो उसने हमें भेड़ियों के सामने असहाय स्थिति में डाल दिया है।

बंगालियों की तरह सिन्धियों ने भी एक क्षणिक जनूनी जोश में पाकिस्तान का निर्माण स्वीकार किया था। पर शीघ्र ही पाकिस्तान के नेताओं पर से उनकी आस्था हट गई।

पाकिस्तान यदि पारम्परिक इस्लामी राष्ट्र नहीं बन पाया तो उसका मूल कारण पाकिस्तान बनाने के आन्दोलन में सबसे आगे बढ़ कर भाग लेने वाले उक्त तीनों वर्गों के उद्देश्यों और सपनों का टकराव था। इस्लामी समाजवाद का व्यावहारिक अर्थ यही समझा गया कि इस नारे की ओट में अनपढ़ मौलवी मुल्लाओं के हाथ में सत्ता चली जाएगी, इसलिए उसका विरोध किया गया।

पाकिस्तान को जो विरोधाभास विरासत में मिले थे उनके कारण सबसे पहला सवाल यही उठा कि इस नए राष्ट्र की भाषा क्या हो। ५५ फीसदी पाकिस्तानी बंगला भाषी थे, शेष पश्तो, बलूची, सिन्धी और पंजाबी बोलने वाले। उर्दू बोलने वाले पाकिस्तान के मूल निवासियों में गिने-चुने लोग थे। पर जो मुहाजिर (शरणार्थी) बन कर पाकिस्तान गए थे, वे उर्दू भाषी थे। सत्ता पर उर्दूभाषियों का वर्चस्व होने के कारण उर्दू को पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया गया। सिन्धी शुरू में चुप रहे। पंजाबी सत्ता में भागीदार थे, इसलिए उन्होंने विरोध करने की जरूरत नहीं समझी। परन्तु बंगाल चुप नहीं रह सका। उसने पाकिस्तान बनने के ६ महीने बाद ही ढाका में जिन्ना को अपना भाषण पूरा नहीं करने दिया। बंगालियों की मांग थी कि उर्दू और बंगला दोनों को राष्ट्रभाषा घोषित किया जाए। पर सत्ता में हावी मुहाजिरों और पंजाबियों ने ऐसा नहीं होने दिया। उसके बाद जो भाषा-विवाद शुरू हुआ, वह बंगला देश के अलग अस्तित्व में आने के बाद ही समाप्त हुआ। बहुसंख्या के हिसाब से बंगला भाषा को पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा होना चाहिए था। पर पंजाबियों और मुहाजिरों के सपनों से इसका मेल नहीं बैठ सकता था।

दूसरा विरोधाभास था पाकिस्तान की राजनीति पर फौज और जमींदारों का हावी होना। इसका भी देर-सवेरे यही परिणाम होना था कि अन्य क्षेत्रीय वर्ग केन्द्र से विमुख हो जाएं। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न और राजनीतिक वर्चस्व के कारण पंजाबियों द्वारा सिन्धियों, बंगालियों, और पख्तूनों का शोषण

होने लगा। फौज का दखल ज्यों ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों आम जनता की आवाज दबाई जाने लगी। फलतः जिन्ना और लियाकत अली की मृत्यु के बाद फौजी तानाशाही का रास्ता साफ हो गया।

बंगला देश के अलग हो जाने के बाद जुल्फिकार अली भुट्टो ने पाकिस्तान पीपल्स पार्टी बनाकर पश्चिमी ढंग के लोकतंत्र और समाजवाद के नारे के आधार पर जनता की रोटी कपड़ा और मकान की समस्या को हल करने का आश्वासन देकर चुनाव में विजय प्राप्त की। पर अपने ढंग का लोकतंत्र स्थापित करने के लिए भुट्टो ने भी फौज का ही सहारा लिया। वे न तो द्विराष्ट्र सिद्धान्त से पीछा छुड़ा सके, न जमींदारों से, न फौज से। फिर भुट्टो उस सिन्ध के निवासी थे जिसकी फौज या पुलिस में कोई भागीदारी नहीं थी। धीरे धीरे पाकिस्तान अमरीकी शतरंज का मोहरा बनता चला गया और रूसी साम्यवाद के विरोध में पाकिस्तान को अपना अड्डा बनाने के लिए अमरीका पाकिस्तानी फौज को शह देने लगा।

ऐसी स्थिति में भुट्टो के बजाय जिया-उलहक की तानाशाही अमरीका को अधिक रास आनी स्वाभाविक थी। जिया ने भी जी भर कर अफगानिस्तान में सोवियत संघ का पांव न जमने देने के नाम से अमरीका को खूब दुहा। जिया ने ही 'आपरेशन टोपेक' के अन्तर्गत कश्मीर को हड़पने की योजना बनाई थी, जिसे अब पाकिस्तान की सरकार क्रियान्वित कर रही है।

इस तरह पाकिस्तान का विघटन होने के बाद जब पाकिस्तान के बुद्धिजीवी अपने अस्तित्व के लिए नकारात्मक आधारों के बजाय सकारात्मक आधार खोजने लगे, तब उनका ध्यान अपने इतिहास की ओर गया। इतिहास के वातायन में झांक कर देखा तो वहां उन्हें अपनी पहचान के रूप में तक्षशिला और मोएन-जो-दड़ो दिखे और दिखा राजा दाहर का गौरवपूर्ण इतिहास जिसने मुहम्मद बिन कासिम जैसे विदेशी हमलावर से अपने देश की रक्षा के लिए डटकर लोहा लिया था। तभी सिन्ध के निवासियों को लगा कि हमारा असली हीरो तो दाहर है, मुहम्मद-बिन-कासिम नहीं। कहीं विदेशी हमलावर भी कभी किसी का हीरो हुआ करता है? यहीं से जी.एम. सैयद के नेतृत्व में जिए सिन्ध के नाम से पृथक सिन्धु देश का आन्दोलन चला।

इस आन्दोलन की उग्रता का और पाकिस्तान के प्रति घृणा का इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि सक्खर में पुलिस और सरकारी अधिकारियों की मौजूदगी में एक सरकारी इमारत पर से पाकिस्तानी ध्वज उतार कर उसमें आग लगा दी गई और सिन्धु देश का ध्वज लहरा दिया गया। जब जी.एम. सैयद कराची से विमान द्वारा सक्खर पहुंचे, तो उनके अनुयायियों ने उन्हें २१ तोपों की सलामी दी और स्वचालित हथियारों से लैस होकर जलूस निकाला। जलूस की समाप्ति पर एक सार्वजनिक सभा को सम्बोधित करते हुए जी.एम. सैयद ने सिंधु देश को एक पृथक् राष्ट्र बनाकर संयुक्त राष्ट्र संघ में उसके प्रतिनिधित्व की मांग की, एवं कायदे-आजम को पाकिस्तान के निर्माण के लिए खूब खरी-खोटी सुनाई।

'जिए सिन्ध' आन्दोलन के समर्थक गिरफ्तार होने लगे और उनका दमन होने लगा तो आम सिन्ध निवासियों की भी आंखें खुलीं। उन्होंने देखा कि सिन्ध विश्वविद्यालय और शिक्षा के अलावा व्यापार, सरकारी नौकरियों और अन्य क्षेत्रों में भी सिन्धियों की और सिन्धी भाषा की पूछ खत्म हो गई है। उन सभी क्षेत्रों में मुहाजिर और पठान हावी होते जा रहे हैं। तो उनको लगा कि अपने ही प्रदेश में वे बेगाने बनाए जा रहे हैं। पहले राजधानी बनाने के नाम पर कराची को सिन्ध से काटा गया, फिर जब पाकिस्तान की राजधानी कराची से हटा कर रावलपिण्डी और उसके बाद इस्लामाबाद ले जाई गई, तो सिन्ध में पाकिस्तानी नेताओं के प्रति आक्रोश और बढ़ गया। बेनजीर भुट्टो का सत्ता में आना उसी आक्रोश का परिणाम था।

तभी पाकिस्तान के निर्माण का एक और विरोधाभास उभर उठा। भारत से जो मुसलमान पाकिस्तान के स्वप्नलोक में गए थे वे अपने साथ दिल्ली और लखनऊ की नफासत और नजाकत-पसन्द तहज़ीब और शेरो-शायरी के खास अन्दाज से भरी उर्दू भाषा की मिठास लेकर गए थे। शुरू शुरू में मेहमान की तरह उनका स्वागत हुआ। पर जब जीविका के साधनों में स्वार्थों का टकराव होने लगा तो इन मुहाजिरों की मेहमानवाजी का दौर खत्म होकर विरोध का भाव बढ़ने लगा। पश्चिमी पंजाब में पूर्वी पंजाब से गए पंजाबी-भाषी मुसलमान तो किसी तरह खप गए, पर उर्दूभाषी नहीं खप

पाए। पंजाबी और पठान उन्हें हिन्दुस्तानियों की औलाद मानकर अपने से अलग और निकृष्ट समझते रहे और उन्हें 'काले कौए' कहते रहे। इन मुहाजिरों को भी पाकिस्तान के किसी और भाग में शरण नहीं मिली, तो व्यापार के केन्द्र कराची, सक्खर और हैदराबाद जैसे शहरों में जीविका के तकाज़े उन्हें खींच लाए। फौज की ताकत बढ़ने का अर्थ था— पंजाबियों का वर्चस्व। धीरे-धीरे मुहाजिर सत्ता से अलग कर दिए गए।



जन-गण-मन अधिनायक जय हे भारत-भाग्यविधाता!
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बंग
विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधि-तरंग!
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष मांगे,

गाहे तव जय गाथा
जन-गण-मंगल दायक जय हे भारत भाग्य विधाता!
जय हे, जय हे, जय हे!!!

रवि बाबू द्वारा देश-विभाजन से अनेक वर्ष पूर्व रचित भारत के इस वर्तमान राष्ट्रगीत में पंजाब और सिन्ध के नाम ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं जबकि पश्चिमी पंजाब और सिन्ध इस समय पाकिस्तान के अंग हैं। क्या यह उनकी भावी नियति का सूचक है?

'हमने पाकिस्तान बनाया, हम ही उसे खत्म करेंगे'

'जिए सिन्ध' का आन्दोलन सिन्ध की भाषा, उसकी संस्कृति और अपनी अस्मिता को कायम रखने के लिए तो था ही, उन सब लोगों के विरुद्ध भी था जिन्होंने उनको अपने घर में ही बेगाना बना दिया था। 'जिए सिन्ध' आन्दोलन का आक्रोश मुहाजिरों के विरुद्ध भी था, पठानों के विरुद्ध भी। स्वार्थों के टकराव की वजह से मुहाजिर भी सिन्धियों और पठानों दोनों के विरुद्ध थे। पठानों को अपने हथियारबन्द होने, हेरोइन आदि मादक द्रव्यों की तस्करी के कारण अनापशनाप पैसा बनाने और परिवहन पर एकाधिकार

होने के कारण दस्युवृत्ति में अपनी श्रेष्ठता का जो घमण्ड था, मुहाजिरों ने भी उन्हीं के तरीकों से उनका सीधा मुकाबला करके उस घमण्ड को तोड़ के रख दिया। चौथा वर्ग पुलिस और फौज का था ही— उस पर पंजाब के लोग छाए हुए थे। इस तरह ये चारों वर्ग आपस में दुश्मनी के कगार पर थे। कौन किसके विरुद्ध था, यह कहने के बजाय कहना चाहिए— कौन किसके विरुद्ध नहीं था। सब एक दूसरे के विरुद्ध थे। आपस में एक दूसरे पर दोषारोपण कर रहे थे और अपने अस्तित्व के लिए खूंखार लड़ाई लड़ रहे थे। सिन्ध एक शान्तिप्रिय प्रदेश नहीं रहा, सीधा रणक्षेत्र बन गया। आए दिन खूनी संघर्ष होते रहे। पाकिस्तान झुलसने लगा। जिस पाकिस्तान ने पंजाब और कश्मीर में आतंकवाद को प्रश्रय देकर भारत में निरन्तर अस्थिरता पैदा करनी चाही थी, वही आतंकवाद सिन्ध का भस्मासुर बन बैठा।

जिस तरह जी०एम० सैयद के नेतृत्व में पृथक् सिन्धु देश का आन्दोलन चला, उसी तरह प्रसिद्ध पत्रकार अलताफ हुसैन ने पृथक मुहाजिरस्तान बनाने का आन्दोलन चलाया। उनका तर्क था— पंजाबी भाषियों का पंजाब है और पंजाबी अपने को औरों से अलग कौम मानते हैं, पश्तोभाषियों का सीमाप्रान्त है और पठान एक अलग कौम हैं, बलोचियों का बलोचिस्तान है और वे भी अपने आपको अलग कौम मानते हैं, सिन्धी भाषियों का सिन्ध है और सिन्धी अपने को अलग कौम मानते हैं, इसी तरह ऊर्दूभाषी मुहाजिरों का भी पांचवी कौम के रूप में एक अलग मुहाजिरस्तान होना चाहिए जहाँ वे अपनी जबान, तहजीब और तमद्दुन को सुरक्षित रख सकें। मुहाजिर कौमी मूवमेन्ट भी उतनी ही जबर्दस्त है जितनी 'जिए सिन्ध' मूवमेन्ट। अतीत में पठानों का लगाव अफगानिस्तान के साथ रहा और बलोचों का सम्बन्ध ईरान के साथ। इन दोनों प्रदेशों में कभी मुस्लिम लीग की दाल नहीं गली। यदि इन दोनों प्रदेशों में जनमत लिया जाए तो वे आज भी अपने मूल देशों में मिलना चाहेंगे।

मुहाजिरस्तान सिन्ध का विभाजन करके ही बन सकता है। यह पाकिस्तान के अन्दर एक और पाकिस्तान होगा। हिन्दुस्तान से आए लोगों का हिन्दुस्तान की सरहद पर एक अलग राज्य स्थापित होना वहां की केन्द्रीय सरकार कैसे

स्वीकार कर लेगी? यह तो अपनी जड़ में ही पलीता लगाना होगा। फिर सिन्ध वासी भी अपने प्रान्त का विभाजन क्यों होने देंगे? पाकिस्तान की केन्द्रीय सरकार से अपनी पृथक्ता के लिए संघर्ष करने वाले बलोचों और पठानों को पाकिस्तान के निर्माण में पहले ही कोई रुचि नहीं थी। अब 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' कहकर अपनी जान कुर्बान करने वाला वहां कौन बचा —सिवाय पंजाबी-प्रधान सेना के और निहितस्वार्थ सत्तासीनों के।

जब जातीय हिंसा की यह लहर सिन्ध के गाँव-गाँव में फैल गई, सड़कों पर लाशों के ढेर लग गए, और लहू के प्यासे उन्मादियों का क्रूर अट्टहास चारों तरफ हिंसा के ताण्डव में बदल गया, तब सिन्ध सेना के हवाले कर दिया गया। सेना ने जैसे अमानवीय अत्याचारों का करिश्मा दिखाया उसने पाकिस्तान के प्रति मुहाजिरों का मोहभंग पूरा कर दिया। सिन्धियों का मोहभंग पहले ही हो चुका था।

पर हजारों मुहाजिरों को मार कर भी सेना स्थिति पर काबू नहीं पा सकी। सेना ने उनकी बस्तियों के टेलिफोन काट दिए, पानी और बिजली की सप्लाई काट दी, राशन की आपूर्ति रोक दी। पीने के लिए पानी की जब एक बूँद भी नहीं बची, तो मस्जिदों से लाउडस्पीकरों के जरिये उन्होंने गुहार की—'खुदा के लिए हम पर रहम करो।' हजारों स्त्री-पुरुष रहम की भीख मांगते हुए मस्जिदों से बाहर निकले तो पुलिस ने उन्हें गोलियों का निशाना बनाया जिसमें सौ से भी अधिक महिलाएं और बच्चे मौत के घाट उतार दिए गए।

इस हत्याकांड ने जलियांवाला बाग की याद दिला दी। इस जघन्य हत्याकाण्ड को मुहाजिर इस्लाम के इतिहास के साथ जोड़कर देखने लगे। हजरत मोहम्मद साहब के दोहते इमाम हुसैन को जिस तरह यजीद की सेना ने पानी की बूंद बूंद तक से तरसा कर मार दिया था, वैसा ही पाकिस्तानी सरकार ने भी किया। तब पता नहीं कहां चले गए तथाकथित मानवाधिकारवादी !

सिन्धी, पठान और मुहाजिर तो आपस में लड़ ही रहे थे, फौज ने पहुंच कर इस आपसी विरोध को और बढ़ाया। वह भी मुहाजिरों के विरुद्ध पिल पड़ी। उनकी बस्तियों पर राकेट दागे गए, दुकानों और मकानों को आग

लगाई गई। मुहाजिरों का जैसे कत्लेआम होने लगा। मस्जिदों से लाउडस्पीकरों से ऐलान किया गया कि गैर-सिन्धियों को खत्म करने वाले सिन्ध की आजादी की जंग लड़ रहे हैं। जब पुलिस आई और उसने स्त्रियों और बच्चों की चीख पुकार सुनी और खुदा के नाम पर पानी माँगने की गुहार सुनी तो उसने बलवाइयों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। शहर की धरती मासूमों के खून से लाल होती रही। फौज ने आकर निरीह लोगों पर गोली चलाने से इन्कार करने वाली पुलिस की टुकड़ी को वहाँ से हटा दिया और स्वयं मोर्चा संभाल लिया।

तब सिन्ध में भगदड़ मच गई। पठान और बलोच कराची छोड़ कर भागने लगे। मुहाजिर भी कराची छोड़ कर गांवों की ओर भागे। पर इस आपसी यादवी ने वहां भी पीछा नहीं छोड़ा। सिन्धी भाग कर कहाँ जाते? हजारों हिन्दू सिन्धी सिन्ध से पलायन कर भारत में शरणार्थी बन कर आने लगे। उन्हीं दिनों प्रधानमंत्री की हैसियत से बेनजीर ने मुहाजिरों को बदनाम करने के लिए और स्वयं सिन्धी होने के कारण सिन्धियों का पक्ष लेने के लिए मुहाजिरों को "भारतीय एजेण्ट" बताया, तो जैसे मुहाजिरों के विरोधियों को उनके कत्लेआम की छूट मिल गई। मुहाजिर मूवमेन्ट के नेता अलताफ हुसेन ने कहाः "पाकिस्तानी शासक चाहते हैं कि मुहाजिर जो एक खास अन्दाज की तहजीब और संस्कृति तथा भाषा अपने साथ लाए हैं उसे भूल कर जिस प्रान्त में वे रहें उसकी सांस्कृतिक गुलामी स्वीकार करके ही पाकिस्तान में जिन्दा रह सकते हैं, जिससे न उनकी अपनी कोई पहचान बाकी रहे, न अपनी संस्कृति। इसीलिए अब जातिसंहार के साथ सांस्कृतिक संहार की तलवार भी चलनी शुरू हो गई है।"

यह सांस्कृतिक संहार किस हद तक चल रहा है, उसका एक नमूना देखिए। बच्चों के स्कूल के दाखिले के फार्म में एक कालम है— "क्या तुम्हारे दादा हिन्दुस्तानी थे?" जो मुसलमान परिवार अबसे 43 साल पहले पाकिस्तान गए थे उनके बच्चों के दादा हिन्दुस्तानी नहीं होंगे, तो कौन होंगे? परन्तु यदि बच्चे उक्त प्रश्न के उत्तर में 'हाँ' लिख दें तो उन्हें स्कूल में दाखिला नहीं मिलेगा, पंजाबी बच्चे को मिल जाएगा। इसीलिए अब मुहाजिरों की

गजलों, नज्मों और कहानियों में भारत छोड़ने का पछतावा साफ झलकने लगा है और उन्हें विभाजन की गलती महसूस होने लगी है। यह उनके चिन्तन का अंग बन गया है। इसीलिए वे अपने आपको पाकिस्तान की पांचवी कौम मान कर एक अलग इलाके की मांग कर रहे हैं जहाँ वे अपने ढंग से अपना सांस्कृतिक जीवन व्यतीत कर सकें। विरोधाभास देखिए- बंगलादेश उर्दू लादने के विरोध में बना था और मुहाजिरस्तान की मांग उर्दू की रक्षा के लिए की जा रही है।

सिन्धियों की नाराजगी का एक कारण और भी है। बंगालियों को प्रताड़ित करने के लिए याहियां खां ने बिहारी मुसलमानों को भारी संख्या में पूर्वी बंगाल पहुंचाया था। पर जब बंगलादेश आजाद हो गया, याहिया खां भी नहीं रहे, तो वे लाखों बिहारी मुसलमान लावारिस हो गए। बंगलादेश उन्हें अपने यहाँ रखने को तैयार नहीं था। पाकिस्तान भी तैयार नहीं हुआ। वे बिहारी मुसलमान उर्दूभाषी जो हैं। जिस तरह पाकिस्तान के पंजाबियों को उत्तर प्रदेश, लखनऊ और दिल्ली के मुसलमान नहीं सुहाते, उसी तरह बिहारी मुसलमान भी नहीं सुहाते। एक नेता ने सुझाव दिया कि उन बिहारी मुसलमानों को सिन्ध में लाकर बसा दिया जाए। पाकिस्तान के सबसे बड़े व्यापारिक केन्द्र, पूर्व-राजधानी में 90 लाख आबादी का ही समाना मुश्किल हो रहा है, बिहारी मुसलमान और आ गए तो पहले बसे बाकी लोग कहाँ जाएँगे? इसीलिए बिहारी मुसलमान और कहीं शरण न पाकर भारतीय प्रदेशों में आ रहे हैं और लाखों की संख्या में सीमावर्ती शहरों में छा गए हैं।

सिन्ध के गृहयुद्ध की ज्वाला को शान्त करने के लिए सेना को भेजा गया, पर सेना भी आग नहीं बुझा सकी। यह सेना के लिए कलंक की बात थी। सेना ने इस कलंक को धोने के लिए सिविल पुलिस और न्यायिक अधिकारों की माँग की जिससे उसे दमन की पूरी छूट मिल जाए। इसके लिए प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो तैयार नहीं हुई। वहीं से बेनजीर और सेना के बीच तनातनी प्रारम्भ हुई, जिसका अन्तिम परिणाम बेनजीर की बर्खास्तगी में दिखाई दिया।

बेनजीर पहली प्रधानमंत्री थी जिसने पाकिस्तान को गत 43 वर्षों में पहली वार लोकतंत्र की लीक पर चलाना चाहा था। पर जहां सैनिक तंत्र ही सर्वेसर्वा हो, वहां लोकतंत्र कैसे चल सकता है? बेनजीर का एक अपराध यह भी है कि उसने हेरोइन और अन्य मादक द्रव्यों की तस्करी में लिप्त बड़े सरकारी अधिकारियों का भण्डाफोड़ करने का निश्चय किया था और तीसरा अपराध यह कि वह स्वयं अपने परिवार को भी भ्रष्टाचार में लिप्त होने से नहीं बचा सकी। इसीलिए उसको जाना पड़ा। अब सेना सर्वतंत्र स्वतंत्र हो गई। अब सेना अपने दुःसाहस का प्रयोग खुलकर कश्मीर के मोर्चे पर कर सकती है।

सिन्ध का उक्त गृहयुद्ध और पाकिस्तान का कश्मीर में सन्निकट दुस्साहस पाकिस्तान का क्या भविष्य निर्धारित करेगा— यह नहीं कहा जा सकता। स्वयं पाकिस्तान का अस्तित्व भी रहेगा या नहीं, यह भी कौन कह सकता है?

पर सिन्धी, बलोच, पठान और मुहाजिरों का मन जिस तरह पाकिस्तान के निर्माण के औचित्य के प्रति शंकाकुल हो उठा है, उसके कारण पाकिस्तान के भविष्य के प्रति शंका अवश्यम्भावी है। मुहाजिर तो खुले आम कहते हैं-

हमारे फूल, हमारा चमन, हमीं हैं बागवां इसके।
मगर आज हमीं को जा नहीं इस आशियाने में॥

अब तंग आकर वे कहने लगे हैं, "हम ही पाकिस्तान लाए, हम ही इसे ले जाएंगे।" (We brought Pakistan and we will take it away.)



तेज हो गई धूप लपक सी तप्त हो गई
और उधर फुफकार रहा खूंखार अजदहा।
नहीं सांस लेने की भी मुझको फुरसत,
छोर नहीं उस पथ का आता,
सफर कठिनतर होता जाता॥

आह, कि मैं भी जल्दी पहुंचूं किसी ठिकाने
कंधे टूटे अब सलीब को ढोते-ढोते।

—बेकस की कश्मीरी कविता का हिन्दी रूपान्तर

कन्धे टूटे अब सलीब को ढोते ढोते

भारत का विलोम है पाकिस्तान। भारत एक बहुजातीय, बहुधर्मीय, बहुभाषीय, धर्मनिरपेक्ष देश है और अपने आपको सही अर्थों में एक राष्ट्र बनाने में लगा हुआ है। मूलतः पाकिस्तान भी वैसा ही था। पर उसने अपने आपको अस्वाभाविक रूप से एकजातीय, एकधर्मीय, एकभाषीय और धर्मसापेक्ष देश बनाने का प्रयत्न किया, इस जबर्दस्ती के कारण ही वह एक राष्ट्र नहीं बन पाया। भारत में वन्देमातरम् का नारा लगाते हुए फांसी पर झूलने वालों की या 'भारतमाता की जय' बोलने वालों की आज भी कमी

नहीं है। पर पाकिस्तान को अपनी मातृभूमि या पितृभूमि मानने वाले कितने लोग हैं? वहाँ अल्लाहो अकबर के घोष का जो महत्व है, क्या वही महत्व 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के घोष का भी है? यदि अल्लाहो अकबर का नारा ही एक राष्ट्र बनने में सहायक होता, तो खाड़ी और अरब देश तथा ईरान, अफगानिस्तान, ईराक आदि सब मुस्लिम देश मिल कर एक महादेश न बन जाते। ईराक और ईरान आपस में क्यों लड़ते? ईराक कुवैत पर जबर्दस्ती कब्जा क्यों करता? सऊदी अरब भी ईराक से अपनी रक्षा के लिए अमरीका की शरण में क्यों जाता? फिर बंगलादेश ही पाकिस्तान से अलग क्यों होता?

इसलिए पाकिस्तान एक देश का नाम नहीं, भारत की विभाजक आत्मा का नाम है। उसको अपने राष्ट्र बनने की चिन्ता नहीं है। उसको असली चिन्ता यह है कि इस एशियाई महाद्वीप में भारत नाम का यह महादेश एक राष्ट्र कभी न बन पाए। उसका जन्म घृणा से हुआ, इसीलिए उसका आधार नकारात्मक है। 'नवभारत टाइम्स'' के सम्पादक श्री राजेन्द्र माथुर ने ठीक ही लिखा कि "जिस दिन भारत एक राष्ट्र के रूप में बिखरेगा, उसी दिन पाकिस्तान को खुलकर खेलने का अवसर मिलेगा। पाकिस्तान एक ऐसा प्रतीक्षा करता हुआ प्रेत है जो फिलहाल एक टाँड पर टंगा है और बैताल बनकर कश्मीर में उतरना चाहता है।''

यों इस्लाम के इतिहास में मित्रघात, भ्रातृघात, पितृघात और विश्वासघात के उदाहरणों की कमी नहीं। परन्तु अपने जन्म के बाद से ही पाकिस्तान जिस घटनाचक्र से गुजरा है, उसने उसे षड्यंत्रों, विश्वासघातों और हत्याओं का देश ही सिद्ध किया है। पाकिस्तान के जनक कायदे-आजम मुहम्मद अली जिन्ना की मृत्यु में पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली खां का हाथ था, तो लियाकत अली की हत्या में सीमाप्रान्त के मुख्यमंत्री अब्दुल कयूम खां का और लियाकत अली के साथियों का हाथ था। गर्वनर जनरल गुलाम मुहम्मद ने प्रधानमंत्री सर निजामुद्दीन को गद्दी से उतार फेंका, तो स्वयं गुलाम मुहम्मद को सिकन्दर मिर्जा ने गद्दी से उतार फेंका। गुलाम मुहम्मद ने वसीयत की थी कि उनके शव को भारत के देवल शरीफ में दफनाया जाए, पर वैसा नहीं किया गया। सिकन्दर मिर्जा ने अपने सब

साथियों को धोखा देकर अयूब खाँ को अपनाया, तो अवसर आने पर अयूब खाँ ने सिकन्दर मिर्जा का ही पत्ता साफ कर दिया। जिन उच्च सैन्य अधिकारियों ने अयूब खां का साथ दिया था, उन्हें अयूब ने एक एक करके राजनीतिक क्षेत्र में खत्म कर दिया। अयूब ने सबसे जूनियर जनरल याहिया खां को प्रधान सेनापति बना दिया। जब याहियां का दांव लगा तो उसने पाकिस्तान की परम्परा का पालन करते हुए अयूब खां का पत्ता काट दिया। अयूब खां ने जुल्फिकार अली भुट्टो को यह सोचकर विदेशमंत्री बनाया था कि राजनीतिक क्षेत्र में उनका कोई स्थान नहीं, इसलिए भुट्टो से किसी प्रकार का खतरा नहीं हो सकता। पर भुट्टो स्वयं राष्ट्रपति बनने की फिराक में थे, इसलिए अयूब का तख्ता पलटने में भुट्टो का ही सबसे बड़ा हाथ रहा।

कायदे-आजम की बहन मिस फातिमा जिन्ना को जनता ने 'मादरे मिल्लत' (जाति की माता) का खिताब दिया था। वह अयूब की तानाशाही के विरोध में सब विपक्षी दलों को संगठित करके राष्ट्रपति के चुनाव में अयूब के विरुद्ध खड़ी हो गई। चुनाव में धांधली करके उसे हराया गया। परन्तु अयूब को इतने से सन्तोष नहीं हुआ। एक दिन खबर मिली कि मिस फातिमा जिन्ना की हृदयगति रुक जाने से मृत्यु हो गई। अयूब की तानाशाही के समय तो कोई बोला नहीं, पर तानाशाही समाप्त होने पर पता लगा कि उसे गला घोट कर मारा गया था।

अवामी लीग के नेता और अखण्ड बंगाल के पक्षपाती हसन शहीद सुहरावर्दी की मृत्यु भी सन्देहों के घेरे में है। वे तानाशाही के विरुद्ध थे और पूर्वी बंगाल के साथ न्याय चाहते थे। भ्रष्टाचार के आरोप लगाकर उन्हें गिरफ्तार किया गया। फिर पाकिस्तान से निकाल कर बेरूत भेज दिया गया। एक वरिष्ठ मंत्री ने उन्हें संदेश भेजा कि यदि वे अयूब का विरोध करना छोड़ दें और भविष्य में राजनीति में कोई भाग न लेने का वचन दें, तो उन्हें वापिस पाकिस्तान आने दिया जा सकता है। जब वे नहीं माने तो किसी पाकिस्तानी एजेन्ट द्वारा बेरूत में ही उनकी हत्या करवा दी गई। उनके शव को पोस्टमार्टम बिना किए ही दफना दिया गया।

कितने छोट-मोटे लोगों की हत्याएं की गईं, उनकी कोई गिनती नहीं।

सीमान्त गान्धी के बड़े भाई डा० खां साहब को किसी तरह पटाकर सीमाप्रान्त से बुलाकर पाकिस्तान का प्रधानमंत्री बनाया गया, पर जब वे सिकन्दर मिर्जा के कारनामों का विरोध करने लगे, तो उनकी भी हत्या करवा दी गई।

जो जुल्फिकार अली भुट्टो बंगलादेश के अलग होने और पाकिस्तानी सेना के बुरी तरह पराजित हो जाने के पश्चात् 90,000 युद्धबन्दियों को छुड़ाकर ले गए तथा जिहोंने सर्वथा पस्त और त्रस्त पाकिस्तान की जनता में पुनः आत्मविश्वास का संचार किया, उसी भुट्टो को जनरल जिया ने अपदस्थ कर फांसी पर लटका दिया। भुट्टो को फांसी पर लटकाने का ही परिणाम था कि उनकी बेटी बेनजीर भुट्टो ने पाकिस्तान में पहली बार लोकतंत्र की ललक पैदा की। पर बेनजीर भुट्टो को शासन संभाले मुश्किल से 19 महीने ही हुए थे कि राष्ट्रपति गुलाम इसहाक खां ने और सेना ने मिलकर उन्हें गद्दी से हटा दिया। बेनजीर की तकदीर अपने बाप से बेहतर होगी, यह कौन कह सकता है।

भारत से मित्रता को इस्लाम से शत्रुता और देश से गद्दारी समझने वाला पाकिस्तान भारत से मित्रता नहीं चाहता। पिछले तीन युद्धों का परिणाम उसके सामने है। वह अपनी नाक काट कर भी भारत का सगुन बिगाड़ने में ही अपनी शान समझता है। फिर जिस तरह सिन्ध गृहयुद्ध से गुजर रहा है, उसे शान्त करने में असफल होने के कारण अन्य प्रान्तों में भी वैसा ही विद्रोह होने से पहले वह कश्मीर के नाम से पाकिस्तानी जनता को उत्तेजित कर अपनी चमड़ी बचाना चाहता है। युद्ध का परिणाम क्या होगा, इसकी उसे चिन्ता नहीं है। सेना को अपनी कारगुजारी दिखाने का मौका तो मिले। आखिर अमरीका से जो इतने नवीन हथियार प्राप्त किए हैं, वे कब काम आएंगे।

आप क्या सोचते हैं कि पाकिस्तान के मन में कश्मीरियों के प्रति हमदर्दी है? खुदा का नाम लो। पाक-अधिकृत कश्मीर में आज तक एक दर्जन राष्ट्रपति बर्खास्त हो चुके हैं। वहां न कोई स्कूल है, न कालेज। एक भी समाचार पत्र नहीं। कोई उद्योग या कारखाना नहीं। विकास-कार्य के नाम पर केवल शून्य ही शून्य। यदि कश्मीरियों से प्रेम होता तो वह वहां भी प्रकट होता। न ही पाकिस्तान को कश्मीरियों की आजादी से कोई वास्ता

है। वह तो कश्मीर को अपना गुलाम बनाना चाहता है और भोले कश्मीरी उन आतंकवादियों के बहकावे में, जो मूलतः कश्मीरी नहीं हैं, और पेट्रो-डालरके प्रलोभन में; जिहाद के नाम पर कश्मीर के स्वर्ग को ज्वालामुखी बनाने पर आमादा हैं।

यह ज्वालामुखी एक दिन में नहीं बना है। शेख अब्दुला से लेकर आज तक जितने अब्दुल्ला आए, वे सब उसे ज्वालामुखी बनाने में ही लगे रहे। फारुक अब्दुल्ला ने खुल्लमखुल्ला सरकारी कर्मचारियों को पाकिस्तान जाने की छूट दी। उसके शासन में बटमल्लू से रोज बसें रावलपिण्डी और मुजफ्फराबाद जाती थीं और उन बसों के कण्डक्टर आवाज दे दे कर यात्रियों को बुलाते थे। सारा सरकारी तंत्र भ्रष्टाचार में लिप्त था। भारत सरकार ने जितना पैसा कश्मीर में बहाया, वह सब उन्हीं सरकारी कर्मचारियों की जेबों में गया। इससे उनकी तृष्णा और बढ़ गई। उनको लगा कि 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाकर भारत सरकार को ब्लैकमेल किया जा सकता है।

असली समस्या पंजाब या कश्मीर के आतंकवाद की नहीं है। उन आतंकवादियों की चाहे जितनी मांगें मान लीजिए, पर उससे आतंकवाद समाप्त होने वाला नहीं है। पंजाब में आप चण्डीगढ़ उन्हें दे दीजिए, अबोहर फाजिल्का दे दीजिए, और भी जो कुछ वे माँगे, सब कुछ उन्हें दे दीजिए। परन्तु समस्या हल होने वाली नहीं है। एक मांग पूरी होगी, तो दूसरी नई मांग खड़ी हो जाएगी। जब भी राजनीतिक नेता सिख नेताओं से मिलकर कोई हल निकालने की पहल करते हैं; उसी दिन आतंकवादी कोई ऐसी बड़ी वारदात कर देते हैं कि वह बातचीत वहीं समाप्त हो जाती है। कारण यह है कि जिस की शह पर यह आतंकवाद उभरा है, उस पाकिस्तान की रुचि समस्या के समाधान में कतई नहीं है। उसे तो भारत को अस्थिर बनाए रखना है। यही उसका असली उद्देश्य है।

विवाद कश्मीर का नहीं। विवाद दो सिद्धान्तों का है। पाकिस्तान द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर बना। यदि कश्मीर मुस्लिम-बहुल होने पर भी भारत में रहता है, तो द्विराष्ट्र सिद्धान्त का खण्डन ही नहीं होता, पाकिस्तान के अस्तित्व के औचित्य का भी खण्डन होता है। न पाकिस्तान अपने सिद्धान्त

को छोड़ सकता है, न भारत अपने सिद्धान्त को। दोनों को अपने इन विरोधी सिद्धान्तों की रक्षा के लिए उनकी कीमत चुकानी होगी। जब तक पाकिस्तान है, तब तक वह अपने इस पुश्तैनी व्यवसाय से बाज नहीं आ सकता। अपनी सार्थकता सिद्ध करने के लिए उसे यह करना ही होगा। अब तो पाकिस्तान की समाप्ति ही एक मात्र उपाय है। इसलिए युद्ध अवश्यम्भावी है।



अयूब खां के भाई ने अपने भाई की तानाशाही से तंग आकर कहा था— 'यदि हमें मालूम होता कि पाकिस्तान में हमारी यह दुर्दशा होगी तो हम कभी पाकिस्तान का समर्थन न करते।'

प्रसिद्ध इन्कलाबी शायर जोश मलीहाबादी विभाजन के बाद कई वर्ष भारत में रहे, बाद में अपने परिवार की ज़िद और पाकिस्तान के प्रलोभनों के वशीभूत होकर पाकिस्तान चले गए। 'यादों की बारात' नाम से अपने संस्मरणों में उन्होंने लिखा— "मैं उन दिनों को रो रहा हूं जब मैंने भारत छोड़ कर पाकिस्तान में आबाद होने का फैसला किया था।"

युद्ध का विकल्प

ऊपर जो उद्धरण दिए गए हैं, वैसे ही कई और उद्धरण दिए जा सकते हैं। स्वयं कायदे-आजम जिन्ना ने अपनी बीमारी के समय लियाकत अली के षड्यंत्रों से परेशान होकर कहा था— "मैं ठीक हो जाऊं तो नेहरू को लिखूंगा, बस बहुत हो चुका, यह खेल खत्म करो।" बम्बई-स्थित जिन्ना का आवास स्थान नीलाम होने लगा, तो जिन्ना ने पाकिस्तान-स्थित भारतीय राजदूत श्रीप्रकाश से कहा — "मेरी यादों में बसे मेरे बम्बई-निवास को नीलाम करके मेरा दिल मत तोड़ो।" श्री प्रकाश ने नेहरू से कह कर वह

नीलामी रुकवा दी। उसके बाद किसी विदेशी दूतावास को वह किराए पर दे दिया गया और किराए की रकम जिन्ना के खाते में जमा होती रही।

खाकसार नेता स्वर्गीय अताउल्लाह शाह बुखारी के सुपुत्र हयातुल्ला शाह ने अपनी एक पुस्तक में लिखा — "मेरे पिता कहा करते थे कि मुस्लिम लीग और मि० जिन्ना मुसलमानों को तबाही की ओर ले जा रहे हैं। तब मेरे पिता को मुस्लिम लीगी गालियां दिया करते थे। आज जो कुछ हो रहा है उससे सिद्ध हो रहा है कि मेरे पिता का कहना ठीक था। यदि वर्तमान रूप में पाकिस्तान का निर्माण न होता तो अखण्ड भारत में मुसलमानों की दशा बहुत अच्छी होती।"

पर इस प्रकार के उद्धरणों की भरमार से भी कोई फायदा नहीं। क्योंकि पाकिस्तान पर हावी उसके सैन्यतंत्र ने इस प्रकार की आवाज को कभी उभरने नहीं दिया।

बात फिर वहीं आकर अटक जाती है। पाकिस्तान अपने द्विराष्ट्र सिद्धान्त को नहीं छोड़ सकता, और गुड़ खाकर गुलगुलों से परहेज करने वाली भारत सरकार कभी उसे स्वीकार नहीं कर सकती। दोनों अपनी जिद पर कायम हैं। दोनों के अस्तित्व की कसौटी है— कश्मीर। मुस्लिम-बहुल कश्मीर का भारत-विलय द्विराष्ट्र सिद्धान्त का खुले शब्दों में खण्डन है और भारतीय सिद्धान्त की विजय है। पाकिस्तान के लिए यह असह्य है। यदि भारत द्विराष्ट्र सिद्धान्त को स्वीकार कर लेता है तो भारत में जो पाकिस्तान से भी अधिसंख्य मुसलमान आबाद हैं, उनका भारत में रहने का अधिकार नहीं बनता। तब वर्तमान सारे समीकरण बदल जाएंगे। जब दोनों पक्षों में से कोई भी अपना विचार बदलने को तैयार नहीं, तब युद्ध के सिवाय और चारा क्या है? दोनों में से कोई एक पूरी तरह पराजित हो जाए, तभी कश्मीर की समस्या का हल सम्भव है। पाकिस्तान के मुल्ला-मौलवी कश्मीर पर दावे के अलावा अपनी जनता में सदा सारे भारत पर इस्लामी परचम फहराने का जोश भरते रहे हैं। वे मौलाना हाली के इस कथन को भूल जाते हैं—

वो दीने हजाजी का बेबाक बेड़ा
निशां जिसका अकसाए आलम में चमका,
न जैहू में अटका न कुलज़म में झिझका
मुकाबिल हुआ कोई ख़तरा न जिसका,
किए पै सिपर जिसने सातों समन्दर
वो डूबा दहाने में गंगा के आकर।

भारत से तीन वार युद्ध में मुंह की खाकर भी पाकिस्तान अपने चिर-घोषित और चिर-पोषित जीवन-लक्ष्य से बाज नहीं आ सकता। इसीलिए उसने गणित का पूरा हिसाब लगाकर, अमरीका से प्राप्त आधुनिकतम हथियारों के बल पर इस वार युद्ध की तैयारी की है। भारत कितना ही युद्ध से बचना चाहे, पर पाकिस्तान के युद्ध-लोलुप, बंगलादेश में भयंकर पराजय से मर्माहत, सैन्य अधिकारी उस हार का बदला लेने के लिए कृत-संकल्प हैं।

पर युद्ध कोई खाला जी का घर नहीं है। भारत की सैन्यशक्ति से भी पाकिस्तान अपरिचित नहीं है। फिर पाकिस्तान की जैसी आर्थिक हालत है उसे देखते हुए वह अधिक दिनों तक युद्ध नहीं चला सकता। भारत की तरह उसका औद्योगिक आधार भी नहीं है। फिर भी वह यह आत्मघाती कदम उठाने पर क्यों उतारू है।

विशेषज्ञों का कहना है कि आधुनिक युद्ध इतने विनाशकारी होंगे कि किसी भी युद्ध के एक सप्ताह से अधिक चलने की आशा नहीं की जाती। पाकिस्तान सोचता है कि भारत तो विशालकाय हाथी की तरह है। हजारों मील तक छाई अपनी सीमा पर तैनात सैनिकों को कश्मीर के मोर्चे पर एकत्रित करने में उसे कम से कम तीन दिन लग जाएंगे। कश्मीर के अलावा अन्य सीमान्तों को भी भारत असुरक्षित तो नहीं छोड़ सकता। आखिर चीनी अजदहा भी तो पाकिस्तान के उपकार-भार और उपहार-भार से लदा होने के कारण उसका साथ नहीं छोड़ेगा। पाकिस्तान ने अपनी सब 'क्रैक' टुकड़ियां कश्मीर की सीमा पर तैनात कर रखी हैं। वह सोचता है कि जब तक भारतीय सेना एकत्रित होकर प्रत्याक्रमण की स्थिति में होगी, तब तक वह कश्मीर पर जर्बदस्त हमला करके उसके काफी भाग पर कब्जा कर लेगा। अन्य पाकिस्तानी प्रदेशों पर यदि भारत हमला करेगा भी, तो वहाँ

पाकिस्तान अपने आधुनिकतम हथियारों से उसके विमानों और टैंकों को इतनी संख्या में ध्वस्त कर देगा कि भारत को लेने के देने पड़ जाएंगे। पर पाकिस्तान का सारा जोर कश्मीर पर ही रहेगा। इस वार भी उसे "चिकन नेक" वाली योजना पर भारी भरोसा है, क्योंकि वहां भौगोलिक स्थिति उसके अनुकूल है। पाकिस्तान को पूरा विश्वास है कि इस प्रारम्भिक तीव्र आक्रमण से वह लाभ में ही रहेगा। जब तक भारत पूरे जोर से पाकिस्तान पर आक्रमण करने को सन्नद्ध होगा, तब तक अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियां युद्धविराम के लिए दबाव डालना प्रारम्भ कर देंगी। इस युद्धविराम से भी पाकिस्तान को लाभ ही होगा। क्योंकि युद्धविराम के पश्चात् दोनों देशों की सेनाओं को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा से पीछे हट जाने को कहा जाएगा। तब भारत को, यदि उसने पाकिस्तान के कुछ इलाकों पर कब्जा कर भी लिया, तो पीछे हटना पड़ेगा। पर पाकिस्तान को कश्मीर के कब्जाए गए इलाके से हटने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि पाकिस्तान उसे शुरू से ही विवादास्पद प्रदेश मानता आया है। (नक्शा देखिए)

फिर पाकिस्तान को अमरीका से अपनी मित्रता पर भी भरोसा है। उसे विश्वास है कि यदि पूरे पाकिस्तान के ध्वस्त होने की नौबत आई, तो अमरीका और आंग्ल-अमरीकी गुट, जो मूलतः पाकिस्तान के निर्माता हैं, वैसा नहीं होने देंगे। जिस तरह बंगलादेश में पाकिस्तान की पराजय के पश्चात् भारतीय सेना लाहौर की ओर बढ़ने को तैयार थी, तो अमरीका ने अपना जंगी बेड़ा भेज दिया और भारत को अपना इरादा बदलना पड़ा था, वैसा ही इस वार भी होगा। पाकिस्तान को यह भी विश्वास है कि युद्ध के समय पाकिस्तान की आर्थिक तंगी के निराकरण में सऊदी अरब के पेट्रो-डालर काम आएंगे। यही सब हिसाब लगा कर पाकिस्तान ने मुस्लिम देशों की अपील ठुकरा कर अमरीका की अपील पर सऊदी अरब की सहायता के लिए अपनी सेना भेजना स्वीकार किया है। पहले से भी पाकिस्तानी सैनिक सऊदी अरब में तैनात हैं।

ईराक और कुवैत के विवाद में बुरी तरह उलझे अमरीका और सऊदी अरब मौका पड़ने पर कितनी सहायता कर पाएंगे, यह अलग बात है, पर पाकिस्तान का गणित यही है। विशेषज्ञों का कहना है कि उक्त एक सप्ताह

की लड़ाई में पाकिस्तान को करीब़ 6 अरब रुपये की हानि होगी, तो भारत को करीब 13 अरब रुपये की। इस आर्थिक हानि की दोनों देश चिरकाल तक भरपाई नहीं कर पाएंगे। आर्थिक, सामरिक अस्त्र-शस्त्र और धन-जन की हानि की दृष्टि से दोनों देशों को सर्वथा बरबाद कर देने वाला युद्ध नाम का इतना महंगा खेल क्या खेला जाना चाहिए ? क्या युद्ध का कोई विकल्प नहीं है ? बुद्धिमानी का तकाजा यही है कि दोनों देश इतिहास से सबक लें। सौभाग्यवश अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां उस ओर संकेत भी कर रही हैं। अमरीका और सोवियत संघ जैसी महाशक्तियां शीतयुद्ध समाप्त कर अपने प्रक्षेपास्त्रों और घातक हथियारों की संख्या घटा रही हैं। पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी अपने विभाजन को समाप्त कर एक हो गए हैं। दोनों कोरिया, दोनों वियतनाम और दोनों चीन एक होने की ओर अग्रसर हैं। फिर हिन्दुस्तान के ये दोनों भाग—भारत और पाकिस्तान अपने कृत्रिम विभाजन को भूल कर एक क्यों नहीं हो सकते ? पाकिस्तान के अनेक नेता और वहां की जनता विभाजन के दुष्परिणाम देख चुके हैं। क्यों न भारत और पाकिस्तान मिलकर एक महासंघ बना लें।

समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया और जनसंघ के नेता पं॰ दीन दयाल उपाध्याय ने परस्पर परामर्श करके 12 अप्रैल सन् 1964 को चौ॰ खुलीकुज्जमां के समक्ष, जिनका पाकिस्तान के निर्माण में जिन्ना से कम योगदान नहीं था, यह प्रस्ताव रखा था। उन्होंने एक संयुक्त वक्तव्य में कहा था—"हम यह मानते हैं कि भारत और पाकिस्तान दोनों का अलग अस्तित्व कृत्रिम और अस्वाभाविक है। दोनों सरकारों के सम्बन्धों में कटुता छिटपुट बातों पर एकपक्षीय चिन्तन का परिणाम है। इसलिए दोनों सरकारों को आपस में बैठ कर खुल कर बात करनी चाहिए। इस खुली बातचीत से बहुत सी तात्कालिक समस्याओं का हल होकर सद्भावना का मार्ग प्रशस्त होगा और इससे दोनों देशों को मिला कर किसी प्रकार का एक भारत-पाक महासंघ बनाने की शुरूआत हो सकेगी।"

पर घृणा और द्वेष के निरन्तर विषवमन से बहरे हुए कानों में ऐसी बुद्धिमानी की बात पड़ने की गुँजायश कहां है ?



माँ का है मुकुट कश्मीर नहीं देंगे कभी
काल हैं कराल शत्रुओं के, सब एक हैं।
मांग रही काली विकराली भेंट रूप उन्हें,
हम कटिबद्ध, भले दीखते अनेक हैं।
रुद्र-शिव प्रेरणाएं, राम कृष्ण वंशज हम,
विश्व-गुरू भारत की सन्तति हैं, एक हैं।
आन की रक्षा हित, प्राण भी लगाते दांव
विश्व कुरुक्षेत्र में हम पाण्डवों से एक हैं।

— डा० महाश्वेता चतुर्वेदी

तो फिर क्या करें?

महासंघ का विचार कितना ही कर्णप्रिय क्यों न हो, किन्तु इस समय भारत और पाकिस्तान में ऐसा कोई सर्वमान्य नेता नहीं है जो दोनों को इस दिशा में प्रेरित कर सके। मुहाजिरों को या अन्य जिन लोगों को पाकिस्तान में रहते हुए भी उसके निर्माण के औचित्य के सम्बन्ध में शंका होने लगी है, उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती की तरह है। पाकिस्तान में जब जब सेना हावी हुई है, तब तब उसने दुस्साहस किया है और उसको मुँह की खानी पड़ी है। फिर भी वह उससे बाज आने को तैयार नहीं है। उसकी अपनी आन्तरिक मजबूरी है।

असल में कश्मीर समस्या भारत विभाजन की समस्या का अंग है। जब तक भारत का विभाजन समाप्त नहीं होता, तब तक यह समस्या भी रहेगी और उससे होने वाले परिणामों को भुगतने के लिए तैयार रहना होगा। इस समस्या को न शिमला समझौता सुलझा सकता है, न संयुक्त राष्ट्र संघ, क्योंकि दोनों देशों की स्थिति दो ध्रुवों जैसी है— दोनों एक दूसरे से विपरीत दिशा में अपने-अपने स्थानों पर डटे हुए है।

पाकिस्तान ने 10 फरवरी, 1990 को अपनी संसद में यह संकल्प पारित किया था :

(1) कश्मीर के आत्मनिर्णय के संघर्ष में पाकिस्तान वहां की जनता के पूरी तरह साथ है (2) भारत को कश्मीरियों की आत्मनिर्णय की मांग को निर्मम दमन से दबाना बन्द कर देना चाहिए। (3) जम्मू-कश्मीर का अन्तिम फैसला संयुक्तराष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् के तत्वावधान में निष्पक्ष जनमत के आधार पर होना चाहिए। (4) पाकिस्तान सरकार अपने प्रतिनिधि-मण्डल भेज कर इस्लामी तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से भारत पर दबाव डालने का आग्रह करे। (5) सरकार और विपक्षी दलों को मिलकर एक संयुक्त राष्ट्रीय परिषद बनानी चाहिए जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर कश्मीरी जनता का समर्थन करती रहे।

बेनजीर के अपदस्थ होने के बावजूद पाकिस्तानी संसद का यह प्रस्ताव वजूद में है ही। इसके रहते शिमला समझौते के अन्तर्गत आप क्या बातचीत करेंगे? विदेशसचिवों की बातचीत का भी कोई फल निकलने वाला नहीं है। वह केवल काल-यापन का बहाना मात्र है।

वास्तविकता यह है कि कश्मीर समस्या के समाधान में पाकिस्तान कोई पार्टी नहीं है, वह तो केवल हमलावर है। कश्मीर की जो भी कोई गुत्थी हो, उसे केवल भारत और कश्मीरी जनता को सुलझाना है। पाकिस्तान न तीन में, न तेरह में। वह खामख्वाह भारत के आन्तरिक मामलों में दखल देने वाला कौन होता है? इसके लिए भारत सरकार को निम्न काम करने होंगे :

(१) सबसे पहले भारत को यह स्पष्ट घोषणा करनी होगी कि कश्मीर का भारत-विलय, अन्य सब राज्यों की तरह, पूर्ण और अन्तिम है और

उसमें जनमत की शर्त का कोई स्थान नहीं है। इसी तरह 370 अनुच्छेद का भी कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि कश्मीर इस अनुच्छेद से दो वर्ष पहले ही भारत में विलय स्वीकार कर चुका है।

(२) दूसरा काम यह करना होगा कि जम्मू-कश्मीर राज्य का अर्थ केवल कश्मीर घाटी नहीं है, जम्मू और लद्दाख भी उसके उतने ही महत्वपूर्ण भाग हैं जिस तरह घाटी है। इन सभी के विकास पर पूर्ण ध्यान देना होगा। अभी तक केवल कश्मीर घाटी पर ही सारा ध्यान दिया गया, जम्मू और लद्दाख पर नहीं। वे दोनों विकास कार्यों के लिए केन्द्रीय अनुदानों से वंचित रहे। फिर यदि कश्मीर घाटी मुस्लिम-बहुल है तो वे दोनों भाग हिन्दू और बौद्ध-बहुल हैं। सत्ता का विकेन्द्री-करण करिए। जम्मू और लेह को भी सत्ता का पूरा भागीदार बनाइए, केवल श्रीनगर को नहीं। जिस तरह असम को कई राज्यों में विभक्त किया गया है, उसी तरह इस राज्य को भी तीन राज्यों में विभक्त करिए। पूरे वर्तमान जम्मू-कश्मीर की आबादी चालीस लाख से अधिक है। इतनी आबादी हिमाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मिजोरम, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा में से किसी की नहीं। तीनों क्षेत्रों के तीन राज्य बना देने से ही उनका सही विकास सम्भव है। उन क्षेत्रों में चिरकाल से यह मांग उठती भी रही है।

(३) कश्मीर घाटी के सम्बन्ध में एक खास महत्वपूर्ण बात और भी है जो सर्वथा भारत के पक्ष में है, पर जिसकी ओर अब तक ध्यान नहीं दिया गया। तथ्य यह है कि कश्मीर घाटी कहीं भी पाकिस्तान से या पाक-अधिकृत कश्मीर से नहीं छूती। जो मुजफ्फराबाद इस समय तथाकथित 'आजाद कश्मीर' का मुख्यालय है, उसी की दो तहसीलें थीं उड़ी और टिथवाल। इन दोनों तहसीलों का अधिकांश भाग भी अब पाकिस्तान के कब्जे में है। परन्तु उड़ी और टिथवाल कस्बे तथा उनको जोड़ने वाली एक संकरी पट्टी अब भी भारत के पास है। इस क्षेत्र से और यहां के लोगों से कश्मीर घाटी का कोई वास्ता नहीं है। यह क्षेत्र उसी तरह केन्द्र द्वारा शासित होना चाहिए जिस तरह रियासत के गैर-कानूनी ढंग से हथियाए गिलगित और बालतिस्तान को पाकिस्तान ने सीधे केन्द्रीय नियंत्रण में रखा

है। इस एक कदम से ही कश्मीर घाटी का पाकिस्तान से कोई धरातलीय सम्बन्ध नहीं रहेगा। इससे घाटी में चोरी-छिपे घुसपैठ करने वाले ऐजेण्टों पर भी कारगर ढंग से नियंत्रण किया जा सकेगा। [नक्शा देखिए]

(४) कश्मीरी मुसलमानों को अब भी धर्मनिरपेक्ष कहना भारी भूल है। वे धर्मनिरपेक्षता की भावना से तभी तक ओतप्रोत थे जब तक उन पर इस्लाम की बजाय अपनी पुरानी हिन्दू संस्कृति का रंग था। अब सऊदी अरब, लीबिया, ईरान और पाकिस्तान द्वारा निरन्तर मतान्धता और कट्टर इस्लामवाद के प्रचार से आम कश्मीरी मुसलमान अपनी कश्मीरी या भारतीय शिनाख्त के बजाय इस्लामी शिनाख्त के लिए अधिक आग्रही हो उठा है। शेख अब्दुल्ला से लेकर अब तक शेख परिवार के दामाद या बेटे ने मुख्यमंत्री के रूप में कश्मीरी जनता के इस्लामीकरण पर ही अधिक ध्यान दिया है। इस्मलामवाद और धर्मनिरपेक्षतावाद साथ साथ नहीं चल सकते।

(५) राजनीतिक प्रक्रिया या विधानसभा के चुनावों की बात करना तब तक व्यर्थ है जब तक कश्मीर में आतंकवाद की कमर नहीं तोड़ दी जाती। इसके लिए वहां जो भी राज्यपाल बने, उसे खुली छूट देनी होगी। इस समय पुलिस में, प्रशासन में और सरकारी सेवाओं में राष्ट्रविरोधी पाकिस्तानी तत्व भारी संख्या में प्रविष्ट हो चुके हैं। इन तत्वों को निर्मूल किए बिना निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनावों की आशा नहीं की जा सकती।

(६) चुनावों में धाधंली होने पर जनता का लोकतंत्रीय प्रक्रिया से विश्वास उठ जाता है। इसलिए स्वच्छ प्रशासन और निष्पक्ष चुनाव को सुरक्षित करने के लिए इस बात का ध्यान रखना होगा कि कोई ऐसा व्यक्ति चुनाव में भाग न ले सके जो कश्मीर के भारत-विलय को पूर्ण और अन्तिम न मानता हो।

(७) एक बार जब नई विधानसभा चुन ली जाए, तो उसे स्वेच्छा से अपना मुख्यमंत्री चुनने की अनुमति होनी चाहिए, उसके लिए केन्द्र की ओर से कोई दबाव नहीं होना चाहिए। जो भी नई सरकार बने, उसे भारतीय संविधान के चौखटे के अन्तर्गत अपने आन्तरिक मामलों में पूरी छूट मिलनी चाहिए। केवल कश्मीर को नहीं, अन्य राज्यों को भी और अधिक अधिकार

मिलने चाहिएं जिससे हर छोटी मोटी बात के लिए वे केन्द्र की ओर न ताकते रहें। कोई भी राष्ट्र-विरोधी हरकत हो तो उसे सख्ती से दबाया जाना चाहिए।

(८) कश्मीर में विकास कार्यों की प्राथमिकताएं भी बदलनी होंगी। सबसे अधिक प्रमुखता देनी होगी बिजली की आपूर्ति को और सड़क द्वारा श्रीनगर को ऊधमपुर से जोड़ने को, क्योंकि ऊधमपुर तक शीघ्र ही रेल व्यवस्था होने वाली है। इसके अतिरिक्त एक और नई सड़क बनाने पर भी विशेष ध्यान देना होगा जो कश्मीर घाटी में स्थित शोपियां को किश्तवाड़, भद्रवाह, चम्बा और पठानकोट से जोड़ती हो। सुरक्षा की दृष्टि से, राजौरी से होती हुई पुराने मुगल मार्ग के साथ साथ सड़क बनाना खतरे से खाली नहीं होगा, क्योंकि वह युद्धविराम रेखा के बहुत निकट होगी।

(९) कश्मीर में अस्थिरता पैदा करने में संयुक्त राष्ट्रीय प्रेक्षकों का भी हाथ है। ये प्रेक्षक सन् १९४९ में युद्धविराम की घोषणा के साथ तैनात किए गए थे। कश्मीर को बल-पूर्वक हड़पने के पाकिस्तान के द्वारा बारम्बार किए गए प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप सन् १९४८ में पाकिस्तानी हमले के विरुद्ध सुरक्षा परिषद में की गई शिकायत अब सर्वथा अप्रासंगिक और व्यर्थ हो चुकी है। इसलिए अब सुरक्षा परिषद से कह कर उन प्रेक्षकों को वापिस भेज देना चाहिए।

(१०) पाकिस्तान के पक्ष में वोट देकर भी विभाजन के बाद जो मुसलमान भारत में ही रह गए, वे अन्दर से पाकिस्तान की इस मनोवृत्ति का समर्थन करते हैं कि मुस्लिम-बहुल प्रदेश पाकिस्तान को मिलने चाहिएं। इस मामले में अन्य मुस्लिम देश भी पाकिस्तान के साथ हैं। इसलिए कश्मीर हमारी विदेशनीति का भी हिस्सा बन चुका है। पाकिस्तान जब कहता है कि सन् १९४७ में हुए अधूरे विभाजन को ही पूर्णता तक पहुंचाने के लिए वह कश्मीर पर दावा करता है, तो यह सिलसिला यहीं क्यों रुके, वह और आगे बढ़ना चाहिए। तब भारत को भी लाहौर और थरपारकर की मांग करनी होगी, क्योंकि वे हिन्दू-बहुल थे। इतना ही क्यों, और आगे बढ़कर देश के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण के प्रश्न को भी दुबारा खोलना

होगा, क्योंकि विभाजन से पूर्व वर्तमान पाकिस्तान हिन्दू-बहुल भारत का ही भाग था।

(११) इसके अलावा पाकिस्तान में पंजाब और कश्मीर के आतंकवादियों को प्रशिक्षण देने के लिए जो शिविर खोले गए हैं, उनको नष्ट करने के बारे में भी सक्रिय रूप से सोचना होगा। आखिर इजरायल ने ईराक के और अमरीका ने लीबिया के अड्डों को बमबारी से नष्ट किया ही था। हमें भी उक्त दोनों देशों से सबक लेना चाहिए। [नक्शा देखिए]

यथार्थवादी नीति अपना कर भारत जब तक पाकिस्तान को उसी की भाषा में दो टूक जवाब नहीं देगा, तब तक कश्मीर की समस्या सुलझने वाली नहीं है। यह देश कश्मीर-सम्बन्धी नेहरू नीति का बहुत खमियाजा उठा चुका है। अब वह नीति बदलनी होगी। यदि इस वार पाकिस्तान पुनः दुस्साहस करता है, तो पाकिस्तान की सैन्य-शक्ति को पूरी तरह ध्वस्त करने के उद्देश्य से ही रणक्षेत्र में कूदना होगा। युद्ध बेशक महाविनाशकारी होता है, पर जब अन्य कोई उपाय न हो तो धर्मयुद्ध के लिए पूर्णतः सन्नद्ध होना भी उतना ही आवश्यक होता है।

'ईश्वर पर विश्वास रखो, और अपनी बारूद सूखी रखो।' (क्रामवेल)



"वह देश दया का पात्र है जो टुकड़ों-टुकड़ों में बँटा है और हर टुकड़ा अपने आपको एक राष्ट्र कहता है।"

— खलील जिब्रान

चिनार में आग लगी है

चिनार में आग लगी है।

कश्मीर को अपनी आँखों से देखे बिना चिनार की बहार का आभास नहीं होता। कहते हैं कि बादशाह जहांगीर ने चिनार की पौध ईरान से लाकर कश्मीर में लगाई थी। पर अब तो चिनार के साथ कश्मीर इतना जुड़ गया है कि कश्मीर और चिनार दोनों पर्यायवाची बन गए हैं। अब उसी चिनार में आग लगी है।

अक्तूबर मास समाप्त होते होते चिनार के पत्ते झड़ने लगते हैं। यह

सर्दियों में नई कोंपले फूटने की तैयारी जो होती है। चिनार की इस पतझड़ का दृश्य भी कितना दर्शनीय और साथ ही कितना मार्मिक होता है, इस बात का अन्दाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि एक 'कश्मीर की बेटी' उस दृश्य को देखने के लिए इतनी बेचैन हो उठी कि बिना किसी को सूचना दिये वह 30 अक्तूबर को अकस्मात् कश्मीर पहुंच गई। उसी दिन वह सवेरे उड़ीसा का तूफानी दौरा करके दिल्ली लौटी थी और वहां जनता के सामने खून की आखिरी बूंद तक देश की रक्षा का प्रण दुहरा कर आई थी। यात्रा के श्रम से थकी हुई थी। पर चिनार के पत्ते गिरने का दृश्य देखने की ललक इतनी तीव्र हो उठी मन में कि कश्मीर बिना गए नहीं रह सकी। किसी सरकारी अफसर को खबर तक नहीं। चिनार के पत्ते गिरने का दृश्य अपनी आँखों में समेटे वह उसी शाम दिल्ली लौट आई। अगले दिन सवेरे 31 अक्तूबर, सन् १९८४ को नौ बजकर दस मिनट पर उसके अंगरक्षकों ने उसके निवास स्थान पर ही उसे गोलियों से भून दिया। कश्मीर की वह बेटी थी— इन्दिरा गांधी — अपने समय की देश की ही नहीं, संसार की सर्वशक्तिशाली महीयसी, ऊर्जस्विनी, प्राणवन्त महिला— जो अपने अंगरक्षकों के विश्वासघात के कारण शहीद हो गई। कितना मार्मिक था चिनार के पत्ते का गिरना!

अक्तूबर के महीने में चिनार के पत्ते गिरने शुरू होते हैं — और उसी महीने पाकिस्तान में चुनाव हो गए। उन चुनावों में ऊंट किस करवट बैठता है, यह देखना जरूरी था, क्योंकि कश्मीर पर उसका सीधा असर पड़ने वाला था। इसीलिए पूरी पुस्तक तैयार हो जाने पर भी उसे रोक लिया गया कि पहले चिनार की जड़ में आग लगाने वाले की कारस्तानी देख ली जाए।

२४ अक्तूबर को पाकिस्तान में चुनाव सम्पन्न हो गए। पूर्व प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो और उसकी पीपल्स पार्टी पराजित हो गई। इस्लामिक जम्हूरी इत्तिहाद पार्टी जीत गई। उसके नेता नवाज शरीफ पाकिस्तान के नए प्रधानमंत्री बन गए। पाक राष्ट्रपति गुलाम इसहाक खान, नवाजशरीफ और प्रधान सेनापति असलम बेग ने मिलकर जो शतरंज बिछाई थी, उसका यही परिणाम होना था। जिस तरह भ्रष्टाचार के आरोप लगाकर ६ अगस्त को बेनजीर

को बर्खास्त किया गया था, आरोपों की सुनवाई के लिए विशेष अदालतें बनाई गई थीं, उससे इरादा तो यही लगता था कि किसी तरह चुनाव में उसे खड़ा ही न होने दिया जाए। पर जब उसमें सफलता नहीं मिली और चुनाव में हार कर भी वह सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी की नेता बन गई, तो चुनावों के बाद भी प्रयत्न यही है कि उस पर एक भी आरोप प्रमाणित हो जाए तो उसे राजनीति से अलग कर दिया जाए और उसके लिए अपने पिता की नियति का रास्ता प्रशस्त कर दिया जाए।

चुनाव से पहले क्या-क्या हथकंडे अपनाए गए थे, इसकी एक झांकी देख लीजिए। पाक राष्ट्रपति ने मतदान से एक दिन पहले रेडियो से राष्ट्र के नाम सन्देश देते हुए कहा. कि वोट उसे दीजिए जो पाकिस्तान को पक्का इस्लामी राज्य बनाने को तैयार हो। इसमें दो बातें छिपी थीं। एक तो यह कि मुल्ला मौलवियों के अनुसार किसी औरत को हकूमत करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता। दूसरी यह कि इस्लाम लोकतंत्र का विरोधी है और बेनजीर पहली प्रधानमंत्री थी जिसने पाकिस्तान को लोकतंत्र के रास्ते पर चलाना चाहा था। इसलिए बेनजीर को वोट देना गैर-इस्लामी होगा। इसी इस्लामवाद के चक्कर में चुनाव में खड़े होने वाले प्रत्येक उम्मीदवार से कहा गया था कि उसे चुनाव अधिकारी के सामने अपने निष्ठावान् दीनदार मुसलमान होने की घोषणा करनी होगी। सेनाध्यक्ष मिर्जा असलम बेग ने आरोप लगाया था कि बेनजीर के इशारे पर भारत के बीस हजार 'रा' के खुफिया एजेण्ट सिन्ध में घुस चुके हैं जो पाकिस्तान में अराजकता फैलाने के लिए खासतौर से प्रशिक्षित किए गए हैं। उनमें एक 'रा' एजेण्ट को पकड़ने का दावा किया गया था और उस पर एक लघु फिल्म बनाकर पाकिस्तान के सिनेमाघरों में दिखाई गई थी।

चुनावी क्षेत्रों का निर्धारण नए सिरे से इस ढंग से किया गया था कि इस्लामी जम्हूरी इत्तिहाद को जीतने से कोई रोक नहीं सकता था। पिछड़े इलाक़ों और गंदी बस्तियों के सुधार के लिए तुरत-फुरत सरकारी खजाने का मुंह खोल दिया गया था। पर सबसे जोरदार खबर यह है कि लाहौर की शाही मस्जिद के इमाम ने चुनावी प्रचार समाप्त होने से एक दिन पहले

हजारों नमाजियों की भारी भीड़ के सामने नाटकीय ढंग से कुरान अपने सिर पर रखी और गरजती हुई ऊंची आवाज में कहा "मेरा यह फतवा घर घर पहुंचा दीजिए कि जो शख्स बेनजीर को वोट देगा उसके लिए जन्नत के दरवाजे बन्द हो जाएंगे और वह सीधा जहन्नुम जाएगा।" इमाम अब्दुल कादरी का यह फतवा पाकिस्तान के तमाम अखबारों ने पहले पेज पर प्रमुखता से छापा था।

इसके अतिरिक्त बेनजीर पर यह आरोप भी लगाया गया कि उसने कश्मीर और भारत के सम्बन्ध में दृढ़ नीति नहीं अपनाई। पिछली सर्दियों में अफगानिस्तान के जलालाबाद शहर पर मुजाहिदीन ने जबर्दस्त हमला किया पर वे शहर पर कब्जा नहीं कर सके थे, उस विफलता का जिम्मेवार भी बेनजीर को ठहराया गया जिसके कारण अफगानिस्तान से आए शरणार्थियों का बोझ पाकिस्तान को उठाना पड़ा। विदेशनीति सम्बन्धी एक प्रबल आरोप यह भी लगाया गया कि बेनजीर ने अमरीका को यह आश्वासन दे दिया कि पाकिस्तान परमाणुबम नहीं बनाएगा, तभी अमरीका पहले दिये लड़ाकू विमानों के अलावा अत्याधुनिक चालीस एफ -१६ विमान और देने को तैयार हो गया। जब अमरीका ने पाकिस्तान को आर्थिक सहायता बन्द करने की घोषणा की तब बेगम नुसरत भुट्टो — बेनजीर की मां — वाशिंगटन में ही थी। इस लिए पाकिस्तान को आर्थिक सहायता बन्द होने का जिम्मेदार भी बेनजीर को ही ठहराया गया। जनता ने इन आरोपों पर विश्वास कर लिया।

इस पृष्ठभूमि से यह स्पष्ट है कि बेनजीर को हारना ही था। बेनजीर जीत भी जाती, तब भी भारत या कश्मीर के प्रति पाक नीति में कोई विशेष अन्तर आने वाला नहीं था। फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि अब लोकतंत्र के कवच की आड़ भी नहीं रही, इसलिए पंजाब और कश्मीर में अलगाववाद को और अधिक प्रोत्साहन देने का रास्ता साफ हो गया है। इस अलगाववाद को बढ़ाने में हथियारों और मादक द्रव्यों की तस्करी भी शामिल है।

पर पाकिस्तान के चुनावों का यह परिणाम तो बहुत सतही है। असल में पाकिस्तान और भारत दोनों पर इसका दूरगामी असर होने वाला है। सबसे मुख्य बात यह है कि पाकिस्तान का जन्म ही गलत आधार पर हुआ

है। जिस द्विराष्ट्र सिद्धान्त से पाकिस्तान का जन्म हुआ उसके कारण पाकिस्तानी राजनीति का मुख्य मुद्दा हमेशा हिन्दू-विरोध और भारत-विरोध रहेगा। केवल कट्टरपन्थी दल ही भारत विरोध की भावना के वशीभूत नहीं है, तथाकथित प्रगतिशील दलों के भी मन के किसी कोने में यही भावना छिपी है। कट्टरपन्थी और नरमपन्थियों में केवल अनुपात का ही अन्तर है। आखिर बेनजीर ने भी भारत से एक हजार साल तक लड़ने की अपने बाप की बात को दुहराया ही था। इसलिए भारत सम्बन्धी नीति में कोई गुणात्मक परिवर्तन होने वाला नहीं है, किन्तु कार्यशैली में अन्तर हो सकता है। हाँ इतना जरूर है कि पाकिस्तान के जो कुछ लोग लोकतंत्रीय जीवन के,भारत-पाक सौहार्द के सपने देखते थे,- वे अब एक दम ठण्डे पड़ जाएंगे और दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध सुधारने की वकालत करने वालों की आवाज और बन्द हो जाएगी।

पाकिस्तान की राजनीति के निर्माण में अमरीकी हित भी एक प्रधान हेतु रहा है। इस उप-महाद्वीप में अमरीकी राजनीति केवल रूस से शत्रुता पर ही आधारित नहीं है। भारत एक ऐसा विशाल और साधन-सम्पन्न देश है कि उसमें औद्योगिक और सामरिक शक्ति बनने की अमित संभावना छिपी है। अमरीका का सारा ऐश्वर्य इस बात पर निर्भर है कि एशिया और अफ्रीका के बाजार उसके लिए सुरक्षित रहें। इसलिए वह कभी नहीं चाहेगा कि भारत इतना आत्मनिर्भर हो जाए कि वह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धी बन जाए। भारत के परों को अधिक उड़ान भरने से रोकने के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन पाकिस्तान है, आगे भी रहेगा। निरस्त्रीकरण के इस दौर में विश्वशान्ति स्थापित करने में तत्पर अपनी छवि को और उज्जवल करने के लिए अमरीका इस आरोप से बरी होना चाहता है कि वह परमाणु हथियारों के विस्तार में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। इसके अलावा इस समय पश्चिमी एशिया के खाड़ी संकट में फँसा होने के कारण वह किसी दूसरे प्रदेश में अपना ध्यान नहीं बाँटना चाहता। इसलिए लगता है कि फिलहाल वह नहीं चाहता कि भारत और पाकिस्तान खुल्लम खुल्ला जंग पर आमादा हो जाएं क्योंकि यह युद्ध निर्णायक हो सकता है। अर्थात् पाकिस्तान पूरी तरह ध्वस्त

हो सकता है , या ऐसा न भी हो, तो भारत में ही ऐसी पाकिस्तान विरोधी लहर चल सकती है कि भारत की सारी राजनीति ही परिवर्तित हो जाए— अर्थात् धर्मनिरपेक्षता का बाना छोड़ कर वह हिन्दू राष्ट्र बनने की ओर अग्रसर हो। तब भारत के करोड़ों मुसलमानों का भविष्य क्या होगा? इसलिए अमरीका भी इतने से ही सन्तुष्ट रहेगा कि पाकिस्तान भारत में राजनीतिक और सामाजिक अस्थिरता बनाए रखे जिससे वह विकास की बड़ी पींगें न भर सके।

पाकिस्तान की राजनीति का प्रभाव हमारे सीमावर्ती राज्यों पंजाब और कश्मीर पर ही नहीं पड़ता, पूरे समाज की समरसता पर पड़ता है। पाकिस्तान और उसके लोग भारत के लोगों के परस्पर जितने निकट हैं उतने संसार के और किसी देश के नहीं। परन्तु मुश्किल यह है कि पाकिस्तान अपने इतिहास और भूगोल को नकार कर अपने आपको पश्चिम एशियाई इस्लामी देश सिद्ध करना चाहता है। अपने इस्लामी चोले में वह हिन्दुओं के साथ रहने को तैयार नहीं। इधर भारत में भी मुसलमानों को अल्पसंख्यकों के नाम से विशेषाधिकार दिए गए हैं जिससे बहुसंख्यक हिन्दू समाज में यह भावना निरन्तर बढ़ती जा रही है कि अल्पसंख्यकों का जरूरत से ज्यादा तुष्टिकरण किया जा रहा है। इससे हिन्दुओं और मुसलमानों में दरार बढ़ती है। पाकिस्तान की नई सरकार इस दरार को निरन्तर बढ़ाने का प्रयत्न करेगी जिसका परिणाम सारे भारत को भुगतना होगा।

चीन ने अपने यहां के इस्लामी नेताओं को आदेश दिया है कि उन्हें अपने नाम में मोहम्मद से पहले 'माओ' लगाना होगा। जो लोग इस आदेश का उल्लंघन करेंगे, उनके विरुद्ध कार्रवाई की जाएगी। चीन के पश्चिमी क्षेत्र शिनजियांग में जिस तरह हिंसक इस्लामी लहर उभरी, उसी को दबाने के लिए यह कदम उठाया गया है। जिन १४ गांवों में विद्रोह हुआ था, वहां की कम्युनिस्ट पार्टी ने उनका पूरी तरह शुद्धिकरण कर दिया है और मुसलमानों को चीनी गणराज्य के प्रति वफादार रहने को कहा गया है। इस समय संसार के ४५ देशों में मुसलमानों की आबादी है। उन सभी स्थानों पर

कट्टरवाद की लहर उभरी है और उन सभी देशों को इसका सामना करना पड़ रहा है।

पाकिस्तान के नए प्रधानमंत्री ने घोषणा की है कि कश्मीर हमारी जीवन रेखा है और हम कश्मीर के उग्रवादियों की सहायता करना बन्द नहीं करेंगे। चुनावों के दौरान तो उन्होंने जनता से यह वायदा भी किया था कि कश्मीर को भारत की गुलामी से आजाद कराके रहेंगे। इस के अनुसार, पंजाब और कश्मीर दोनों जगह पाकिस्तान में नई सरकार बनने के बाद आतंकवादियों की गतिविधियों में और तेजी आ गई है और निरीह लोगों की हत्याओं की संख्या में भी वृद्धि हो गई है। प्रशिक्षित आतंकवादियों को सीमा पार कर कश्मीर में घुसाने के लिए पाकिस्तान ने पुंछ और राजौरी क्षेत्र में अनेक बार अकारण गोलीबारी की है, ताकि उसकी आड़ में वे सीमा पार कर सकें। पर भारतीय सीमा सुरक्षा बल की चौकसी के कारण उन्हें पूरी तरह सफलता नहीं मिल सकी। इस समय चार हजार आतंकवादी पीरपंजाल के रास्ते कश्मीर में घुसने की फिराक में हैं। इसी प्रयोजन से पाकिस्तान ने इन प्रशिक्षित आतंकवादियों को नियंत्रण रेखा के निकट एकत्र कर लिया है और अपना तोपखाना भी तैनात कर दिया है जिससे रात- बिरात कभी भी गोलाबारी करके उसके कवच में वे घाटी में घुसपैठ कर सकें। जिन रास्तों से भारतीय सीमा में घुसपैठ की जा सकती है उन पर भारत ने गश्त और तेज कर दी है। रोज ही कुछ घुसपैठिये मारे जाते हैं और कुछ पकड़े जाते हैं। जब तक पाकिस्तान को किसी भी तरह घुसपैठियों को सीमा पार करवाने में सफलता मिलती रहेगी, तब तक उसे किसी बड़ी जंगी कार्रवाई की जरूरत नहीं। जब इतने सस्ते में वह कश्मीर में आतंकवादी कार्रवाइयां जारी रख सकता है, तब लड़ाई जैसा महंगा खेल क्यों खेले!

अब उन आतंकवादियों के पास पहले से और अधिक अच्छे हथियार हैं, उनके पास सुरंग हैं, बम हैं और राकेट भी हैं। अब उनको केवल अशान्ति फैलाने के लिए या छिटपुट वारदातों के लिए प्रशिक्षित नहीं किया जाता, सीधे छापामार लड़ाई के लिए प्रशिक्षित करके भेजा जाता है। इसलिए वे सीधा सुरक्षा बलों पर,गश्ती सैन्य दलों पर घात लगा कर हमला करते

हैं, पुलों को उड़ाते हैं, सरकारी इमारतों पर बम फेंकते हैं और दुकानों और मकानों को आग लगाते हैं। इसीलिए जहां रोज कुछ आतंकवादी मारे जाते हैं, वहां सुरक्षा बल और सेना के जवान भी मारे जाते हैं।

आतंकवादियों की इन ज्यादतियों का ही नतीजा है कि लगभग साठ हजार हिन्दू परिवार कश्मीर की घाटी से पलायन कर जम्मू, दिल्ली या अन्य शहरों में शरणार्थी बनने को विवश हुए हैं। कहा जाता है कि अब केवल ३०० या ४०० परिवार ही शेष बचे हैं। आतंकवादियों के अत्याचारों के शिकार हिन्दू ही नहीं, सिख भी हुए हैं और अब तो मुस्लिम परिवार भी पलायन पर उतारू हैं। हिन्दुओं पर वहां जिस तरह अत्याचार किए गए हैं उनके सम्बन्ध में एक ७५ वर्षीय वृद्ध समाजसेविका लाजोदेवी का बयान पढ़िये—

"... मेरे ऊपर भी मुसलमानों ने हमले किए हैं। आठ जगह मुझे छुरे लगे हैं। इस वक्त मैं घायल पड़ी हूँ। पता नहीं कब प्राण-पखेरू उड़ जाएँ। मरने से पहले मैं अपने मुल्क को, अपने हिन्दू भाइयों को कुछ तजुर्बे की बात कहकर और कुछ सही बयान करके मरना चाहती हूँ.....

कश्मीर में हिन्दुओं के कई परिवारों के पुरुषों को मुसलमान गुण्डों ने खम्भों के सहारे खड़ा करके रस्सी से बाँध दिया और उनकी नौजवान बहू-बेटियों के साथ बारी-बारी से दस-दस गुण्डों ने बलात्कार किया। हिन्दुओं की बहू-बेटियाँ लहू-लुहान होकर बेहोश हो गईं। बेहोशी में उनके जिस्म में सुई लगाकर सारा खून निकाल लिया गया और बाद में उन बहू-बेटियों की एक-एक बोटी काटकर दरिया में फेंक दी गई। कई माँ-बापों की यह नजारा देखकर हृदय-गति रुक गई। कुछ बेहोश होकर खम्भों के सहारे लटके रह गए।

कई जगह ऐसी भी घटनाएँ हुई हैं कि छोटे-छोटे बच्चों को उनकी माँ की गोद से मुसलमान गुण्डों ने छीन लिया और उन साल-छः महीने के बच्चों की टाँग पर टाँग रखकर चीर दिया और जानवरों के सामने फेंक दिया।

मुझे कई महिलाओं ने अपने शरीर दिखाए। उनकी जंघाओं पर, छाती पर 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' खुदा हुआ था। उनके अंगों को गरम साँचों से

दागा गया, जिसकी वजह से हिन्दू महिलाएं कई दिन तक तिलमिलाती रहीं, बाद में इन्हें इसलिए छोड़ दिया गया कि वे हिन्दू खानदानों में अपनी हालत दिखाएँ और सबके दिलों में खौफ पैदा हो। ऐसी बहशियाना हरकतों के कारण हिन्दू अपनी जान और आबरू बचाकर भागे हैं।

वैसे भी वर्षों से घाटी का माहौल जहरीला बना हुआ है। श्रीनगर के गलीकूचों में नारे सुनने को मिलते हैं—

- "पाकिस्तान जिन्दाबाद"।
- "हिन्दुस्तानी, कुत्तो भाग जाओ।"
- राष्ट्रीय झण्डे को चौक पर सरे आम जलाया जाता है।
- वहाँ सभी को अपनी-अपनी घड़ियों का समय पाकिस्तान स्टैण्डर्ड टाइम के मुताबिक रखने को मजबूर किया जाता है।
- कश्मीर में पाकिस्तानी सिक्का चल रहा है। हिन्दुस्तानी नोट या सिक्कों पर थूककर उन्हें जूतों से रौंदा जाता है।
- जिस स्कूल या कॉलेज में कुरान नहीं पढ़ाई जाती वे स्कूल बन्द कर दिए जाते हैं या उन स्कूलों को आग लगा दी जाती है।
- हिन्दुओं के घरों पर पोस्टर चिपकाये जाते हैं कि काफिरो! अपनी बहन-बेटियों को यहीं छोड़कर कश्मीर खाली कर जाओ, वरना तुम्हारी गर्दन काट ली जाएगी।
- हजारों हिन्दू परिवार कश्मीर से भाग आए। जो हिन्दू मजबूरी में वहाँ रह रहे हैं उन्हें वहाँ जो जुलूस निकलते हैं उनमें सबसे आगे रखा जाता है और हिन्दुस्तान के खिलाफ उन हिन्दुओं से नारे लगवाए जाते हैं।

कश्मीर में मुसलमानों के इतने हौसले कांग्रेस और डॉ॰ अब्दुल्ला की मिली जुली सरकार ने बढ़ाए हैं। पिछले तीन-चार साल से पाकिस्तानी लोग कश्मीर में घुसते रहे हैं। कांग्रेसी सरकार ने उनकी रोकथाम नहीं की। पाकिस्तानी लोगों ने कश्मीर में आकर दो हजार मस्जिदें बनवाईं। उनमें स्कूल चलाना शुरू किया, कश्मीरी मुसलमानों को हिन्दू और हिन्दुस्तान के खिलाफ भड़काया। उन्हें पाकिस्तान ले जाकर फौजी ट्रेनिंग दी गई, हथियार

और बम बनाना और चलाना सिखाया गया। सरकार की जानकारी में यह सब कुछ था, लेकिन उसे इस सबकी कोई फिक्र नहीं थी।"

जो हिन्दू शरणार्थी घाटी से पलायन करके आए थे उनके लिए भारत सरकार ने सदा उपेक्षा का भाव रखा। यदि कुछ सामाजिक संस्थाओं ने उन सबके राशन-पानी और आवास की व्यवस्था न की होती, तो उन की कितनी दुर्दशा होती! अब सरकार ने उनको मुफ्त राशन देना भी बन्द कर दिया है। दूसरी ओर आतंकवादियों ने घाटी को हिन्दू-शून्य करने के लिए यह ऐलान भी कर दिया है कि यदि नवम्बर के अन्त तक वे घाटी में वापिस नहीं लौटेंगे तो उनके मकान और दुकान कश्मीरी मुसलमानों को दे दिये जाएंगे। वे जानते हैं कि कश्मीर की घाटी में हिन्दुओं के जानमाल की रक्षा सरकार के वश में नहीं है। ऐसी हालत में वहां कौन लौटना चाहेगा? फिर नवम्बर तक सरकार का 'दरबार' और सब कर्मचारी कश्मीर की भयंकर सर्दी से बचने के लिए अक्तूबर में ही जम्मू में आ चुके हैं। जो मुसलमान सरकारी कर्मचारी घाटी में बचे हैं उन्होंने १४ सितम्बर से हड़ताल की हुई है और राज्यपाल ने उस हड़ताल को अवैध करार देकर उनकी मांगों के आगे झुकने से इन्कार कर दिया है। पिछले दिनों आतंकवादियों ने लगभग चार सौ मकान जला दिये हैं जिसके कारण उनमें रहने वालों को कश्मीर में ही अपने अन्य सगे-सम्बन्धियों तथा इष्टमित्रों के यहां शरण लेनी पड़ी है। कश्मीर की कठिन शीत ऋतु काटने के लिए न उनके पास पर्याप्त राशन है, न गरम कपड़े। और सर्दियां प्रारम्भ हो गई है। (बाद में पूरे ७१ दिन बाद एक लाख ३७ हजार लोगों की यह हड़ताल समाप्त हो गई। केन्द्र के आग्रह से राज्यपाल ने उन ५ प्रमुख सरकारी कर्मचारियों को छोड़ दिया जिन्हें राज्य-विरोधी गति-विधियों के कारण गिरफ्तार किया गया था। क्या यह वैसी हीं गलती नहीं थी जैसी रूबिया के अपहरण के समय की गई थी।)

इधर केन्द्र में पिछले दो मास से ऐसी उठापटक चल रही थी कि किसी को कश्मीर या पंजाब की दुर्दशा की ओर ध्यान देने की फुर्सत ही नहीं थी। मण्डल आयोग, रामजन्मभूमि विवाद, अयोध्या का नरसंहार और कुर्सी

की दौड़ इस प्रकार हावी रही कि सारा देश अनायास अराजकता की ओर बढ़ता नजर आया। चन्द्रशेखर ने नई सरकार का गठन करते ही पंजाब और कश्मीर की समस्या सुलझाने और वहां राजनीतिक गतिविधि प्रारम्भ करने के लिए आतंकवादियों से बात करने की पेशकश की। पर दोनों स्थानों के आतंकवादियों ने बातचीत के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। कश्मीर के आतंकवादियों ने तो खुलेआम यह घोषणा भी कर दी है कि कश्मीर के बारे में जो भी सरकार से बात करेगा, उसकी जान की खैर नहीं है। कारण? कारण यही कि जिसकी शह पर वे काम कर रहे हैं उस पाकिस्तान को समस्या के समाधान में कोई रुचि नहीं है। उसकी रुचि केवल कश्मीर में अस्थिरता बनाए रखने में है।

जब स्वयं केन्द्र में ही अस्थिर सरकार हो और वह केवल अन्य दलों की बैसाखियों के सहारे टिकी हो, तो भारत की ओर घात लगाए उसके जन्मना शत्रु पाकिस्तान के लिए यह कितना बड़ा प्रलोभन है! जो बात उसे अनायास सुलभ है उसे अपने अनुकूल पाकर वह कोई बड़ी शरारत करने पर उतारू हो जाए तो क्या आश्चर्य!

पर कश्मीर के आतंकवादियों को एक बात समझ लेनी चाहिए और वह यह कि जो पाकिस्तान अपने यहां लोकतंत्र स्थापित नहीं कर सका और सन् ७९ में बंगलादेश के रूप में अपने विघटन को नहीं रोक सका, अब भी जहां सिन्ध, बिलोचिस्तान और सीमाप्रान्त विद्रोह के कगार पर हैं तथा अपने अलग राष्ट्र होने का दावा करते हैं, उस पाकिस्तान की गोद में जाकर कश्मीर को कितना लाड़ मिलेगा, यह तथाकथित आजाद कश्मीर को देखकर समझ लो— जहां विकास के नाम पर सिवाय शून्य के और कुछ नहीं है।

यह ठीक है कि सेना दोनों तरफ है, पर दोनों में फर्क है। एक तरफ गुलाम बनाने वाली सेना (Army of Occupation) है और दूसरी तरफ गुलामी से मुक्त करवाने वाली सेना (Army of Liberation) है। देवदत्त और सिद्धार्थ वाली कहानी भूल गए? देवदत्त ने बाण से हंस को घायल कर दिया। हंस जमीन पर पड़ा तड़फड़ा रहा था। सिद्धार्थ से उसकी करुण दशा नहीं देखी गई। उसने उसे उठाया, छाती से लगाया, पानी पिलाया,

और उसे मरने से बचा लिया। इतने में देवदत्त पहुंच गया। बोला— "यह हंस मेरा है, मैंने इसे बाण से घायल किया है।" सिद्धार्थ ने कहा—" नहीं, हंस मेरा है, क्योंकि मैंने इसकी रक्षा की है।" अन्त में महाराज शुद्धोदन के पास केस गया। शुद्धोदन की न्यायबुद्धि ने फैसला दिया कि हंस सिद्धार्थ के पास रहेगा, क्योंकि उसने उसकी रक्षा की है। मारने वाले से रक्षा करने वाला सदा बड़ा होता है। इसके बाद सिद्धार्थ ने हंस की दवा-दारू की और जब वह बिल्कुल ठीक हो गया तो उसे आकाश में उड़ने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया।

इसलिए वास्तविकता यही है कि कश्मीर के मामले में पाकिस्तान कोई पार्टी नहीं है, वह केवल आक्रमणकारी है। कश्मीर भारत का आन्तरिक मामला है। वैधानिकता, न्यायबुद्धि तथा अन्य जितने भी कारण हो सकते हैं उन सबसे यही सिद्ध होता है। इस सत्य को झुठलाना समस्त मानवता द्वारा स्वीकृत नैतिकता को झुठलाना होगा।

पर फिलहाल तो चिनार में आग लगी है। सर्दियों में पड़ने वाली बर्फ भी इस आग को बुझा पाएगी— इसके दूर तक कोई आसार नहीं हैं। इस आग से धरती का स्वर्ग झुलस रहा है।

पर एक दिन इस जलते चिनार में नई कोपलें फूटेंगी अवश्य—

जहां कारवां भूल जाते हैं रस्ता।
वहीं से निकलती है मंजिल की राहें॥



कश्मीर की आजादी के प्रथम शहीद

परमवीर चक्र विजेता कम्पनी क्वार्टर मास्टर अब्दुल हमीद



जिनके मरने पर पाकिस्तान में खुशियां मनाई गईं। खेमकरण क्षेत्र को पाकिस्तानी पैटन टैंकों का कब्रिस्तान बनाने में प्रमुख योग देने वाले कम्पनी क्वार्टर मास्टर अब्दुल हमीद १० सितम्बर, १९६५ को शहीद हुए।

'कश्मीर केसरी' मकबूल शेरवानी



नेशनल कान्फ्रेंस के कर्मठ कार्यकर्ता, प्रगतिशील कवि, कश्मीर-केसरी मकबूल शेरवानी को कबायलियों ने बारामूला में उन्हीं के मकान में कीलों से गाड़कर गोलियों से छेद दिया और मकान को आग लगा दी।

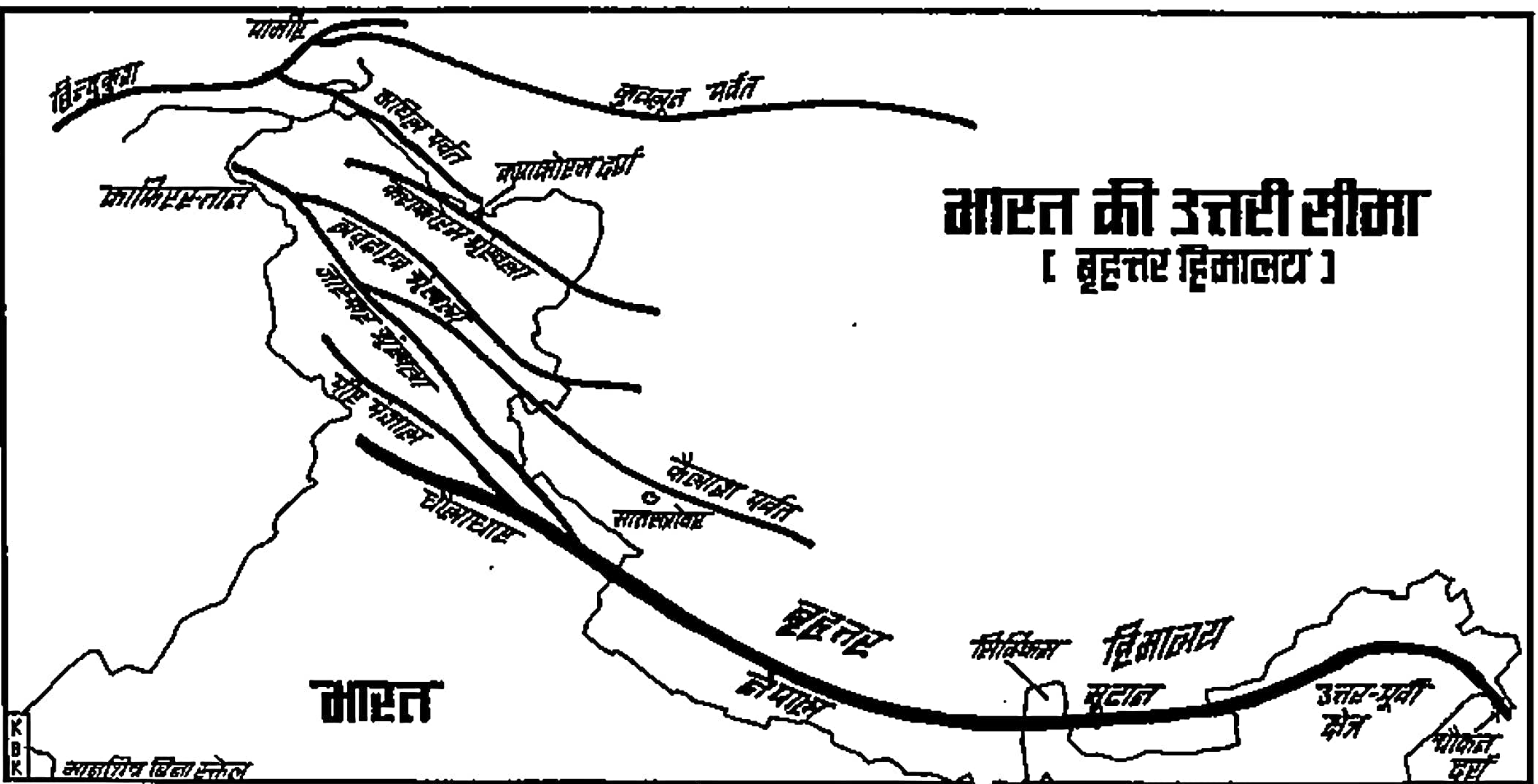
'नौशेरा का वीर' ब्रिगेडियर उसमान



भारतीय तोपखाने का कुशल संचालन करते हुए ब्रिगेडियर उसमान झंगड़ (राजौरी क्षेत्र) में ३ जुलाई, १९४८ को शहीद हुए। उन्हें 'नौशेरा का वीर' के रूप में स्मरण किया जाता है।

लेफ्टि॰ कर्नल
डी॰आर॰ राय

भारतीय सेना का नेतृत्व करने वाले लेफ्टि॰ कर्नल डी॰ आर॰ राय बारामूला में २७ अक्टूबर, १९४७ को कबायलियों के हाथों शहीद हुए।

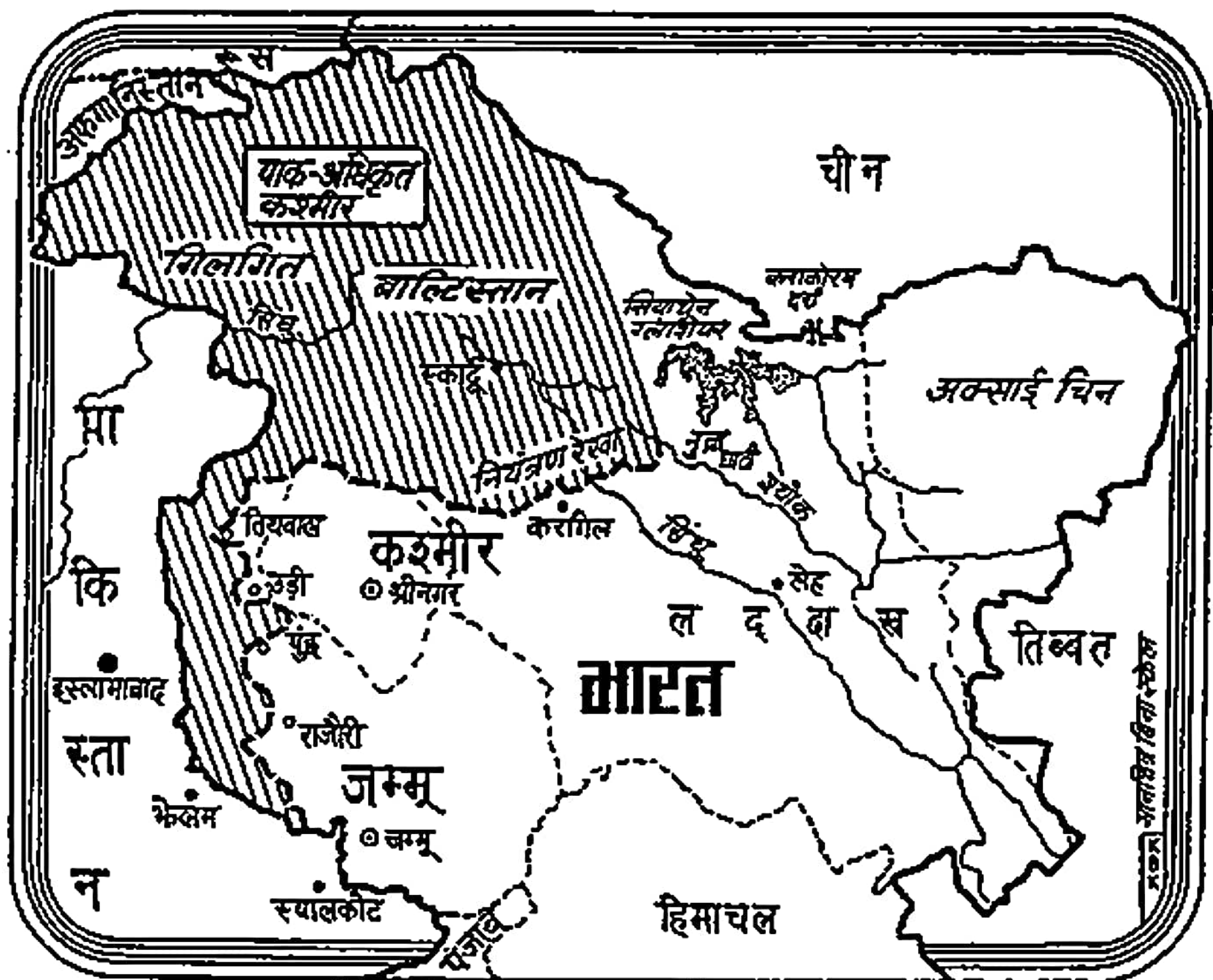


यह है भारत की वास्तविक उत्तरी सीमा — पामीर और हिन्दुकुश से लेकर बर्मा के ऊपर चोकन दर्रे तक — पूरा हिमालय। पामीर को पुराणों में सुमेरु पर्वत कहा गया है। आज भारतवासी अपनी इस उत्तरी सीमा को भूल गए हैं।



जम्मू और कश्मीर राज्य का क्षेत्रीय मानचित्र
१९३८-३९
चित्राल
यासिन
हुंजा
नगर
गिलगित
सिंध
उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश
तुर्किस्तान
कराकोरम
पर्वत
बालतिस्तान
स्कार्दू
करगिल
हंडवारा
श्रीनगर
लद्दाख
सिंध नदी
चीनी-तिब्बत
रावलपिंडी
पुंछ
राजौरी
स्यालकोट
जम्मू

वर्तमान जम्मू-कश्मीर का मानचित्र (सन् १९९०)



पाक अधिकृत कश्मीर और कश्मीर घाटी के मानचित्र पर ध्यान दीजिए, साथ ही उड़ी और तिथवाल की संकरी पट्टी पर भी। तब हमारे सुझाव की उपयोगिता स्पष्ट होगी।

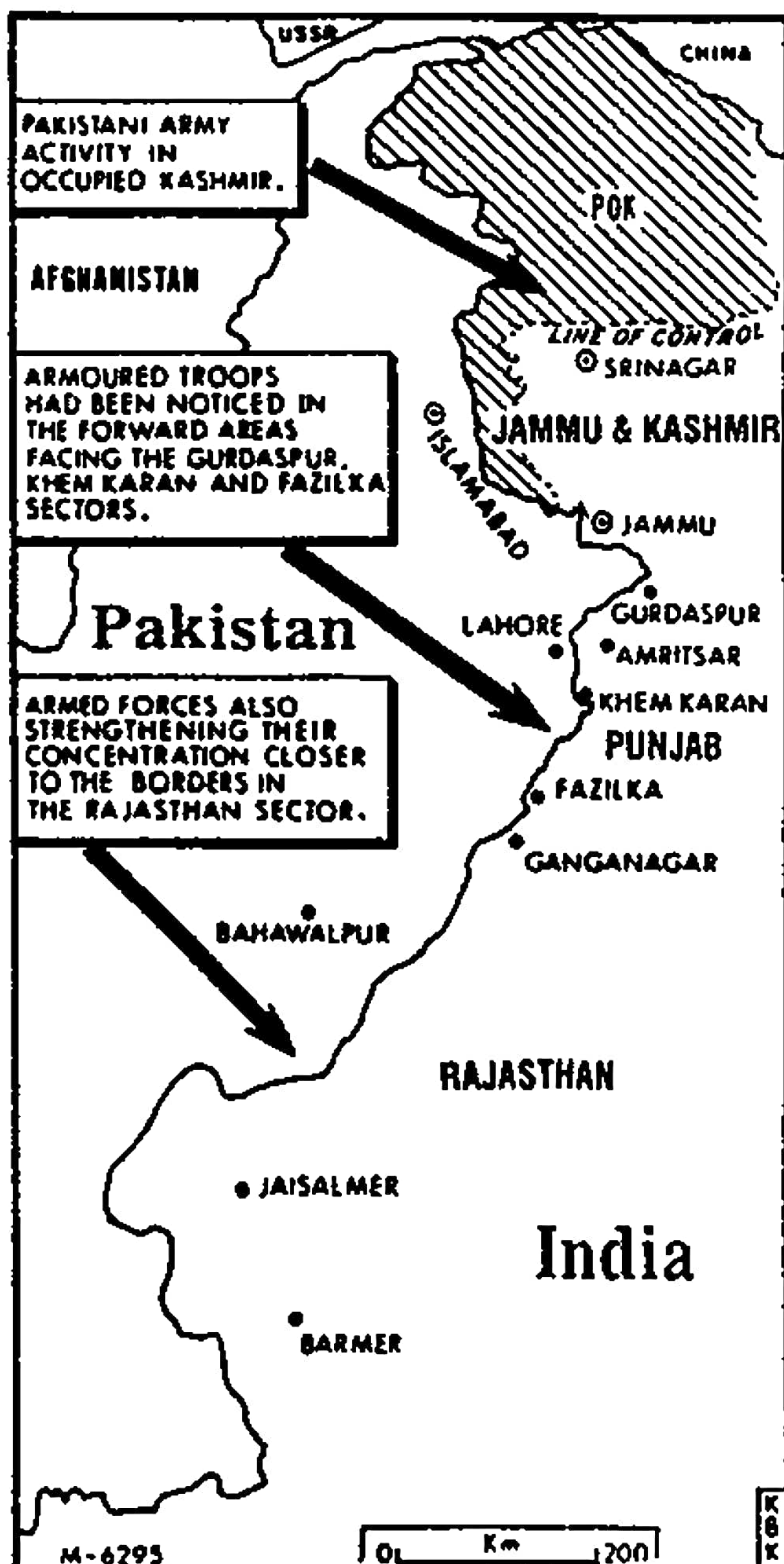
CAMPS OF PAKISTAN FOR TRAINING OF JKLF EXTREMISTS

P.O.K.

26 GILGIT
KAMRI 1
2 KEL
JAGRI 44
41 DHUDHNIAL
LINE OF CONTROL
MAKRI 3
12 SHINKIARI
PESHAWAR 24
43 ATHMUGAM
MADINA MARKET 30
5 LIPA VALLEY
GOJRA FORT 29
JAMMU & KASHMIR
13 ATTOCK
4 SHANKOT LINE
NANDGAIL BAGH
MURREE 25
35
7 ALIABAD
HOSPITAL CAMP 16
ABBOTABAD 14
LESWA 36
6 CHINAR
CHANDNI CHOWK 45
8 RAWALAKOT
RAWAL PINDI 17
34
40 SIOT
46 OJERI CAMP
JHARI CAMP 15
33
27 BAGH
LAHABADPUR
ARZA
37
9 HOLLARD
MANG BAJRI
MANSAR CAMP 23
Pakistan
10 MIRPUR CITY
BHATAPORA 28
JARI KHAS 32
PUNI TANDER 31
39
42 PALANDRI
KOTLI
11 BHIMBER
CHAKWAL 38
India
SIALKOT 18
19 SARGODHA
20 GUJRANWALA
GULBARG 21
PUNJAB
KDK
M-6274

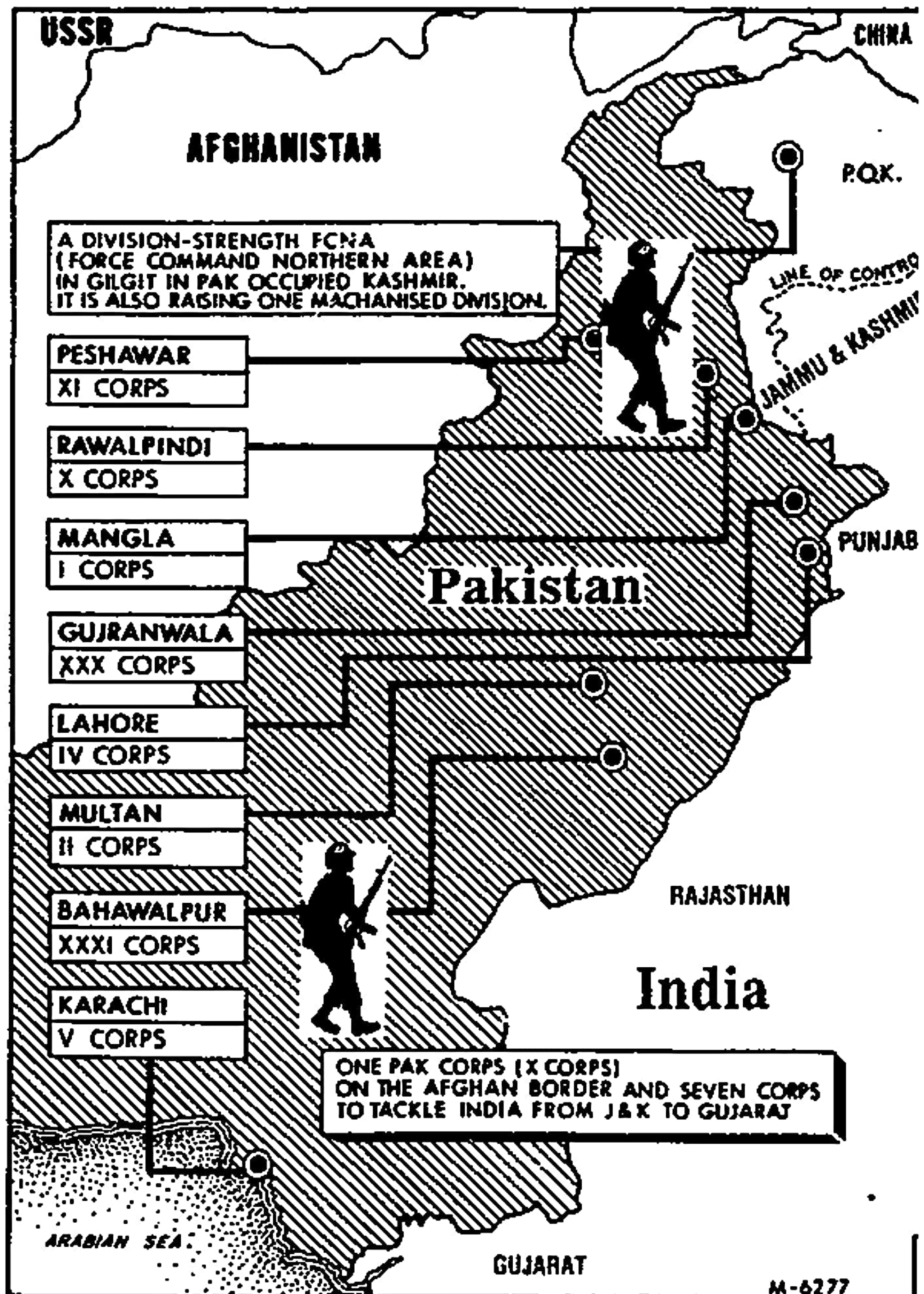
पाकिस्तान में आतंकवादियों के प्रशिक्षण शिविर कहाँ कहाँ हैं।

Pak troop build-up along border



सीमा के साथ पाकिस्तानी सेना कहाँ कहाँ तैनात है।

PAKISTANI DEPLOYMENT



अफगान सीमा पर पाकिस्तान की केवल एक सैनिक टुकड़ी है, जबकि जम्मू-कश्मीर से लेकर गुजरात तक सात टुकड़ियां तैनात हैं।